

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टूबर २०१६

Date of Printing = 05-10-16

प्रकाशन दिनांक= 05-10-16

वर्ष ४५ : अङ्क १२

दयानन्दाब्द : १६२

विक्रम-संवत् : आश्विन-कार्तिक, २०७३

सृष्टि-संवत् : १,६६,०८,५३,११७

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य

प्रकाशक व

सम्पादक : धर्मपाल आर्य

सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री

व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३६८५५४५, ४३७८११६१

चलभाष : ६६५०५२२७७८

E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये

आजीवन सदस्यता ५००) रुपये

विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

☐ वेदों की दृष्टि में....	२
☐ वेदोपदेश	३
☐ अधर्म से अर्जित....	४
☐ शिक्षक, शिक्षा और समाज	६
☐ योगदर्शन.....	८
☐ हाय दिनकर जी.....	११
☐ आर्यसमाज टोरन्टो.....	१६
☐ ऋषि दयानन्द....	१८
☐ बन जाओ गौभक्त	२३
☐ वेदों में कोई	२४

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण	-	३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द)	-	५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

वेदों की दृष्टि में 'अश्रद्धा' भी एक बड़ा सद्गुण है !

(भावेश मेरजा, भरुच मो. ६८७६५२८२४७)

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ के 'वेदोक्त-धर्म-विषय' प्रकरण में ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र (१०. १६१.४) 'समानी व आकूतिः... समानमस्तु वो मनो. ..' उद्धृत किया है। इस मन्त्र के मनः शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने शतपथ ब्राह्मण के 'कामः संकल्पो...' (१४.४) वाक्य का प्रमाण दिया है, जिसमें मन के अनेक अर्थ एवं कार्यों का उल्लेख किया गया है। शतपथ के इस प्रमाण में मन के सम्बन्ध में श्रद्धा के साथ-साथ अश्रद्धा का भी उल्लेख किया गया है। वैसे तो इन दोनों को - श्रद्धा और अश्रद्धा को परस्पर विरुद्ध गुण माना जाता है। परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थ के इस प्रकरण में श्रद्धा और अश्रद्धा की व्याख्या करते हुए जो लिखा है, इससे श्रद्धा की तरह अश्रद्धा का भी सकारात्मक पहलू हमारे ध्यान में आता है और श्रद्धा की तरह अश्रद्धा भी आचरणीय, ग्राह्य होती है- यह विशेष ज्ञान होता है।

महर्षि ने लिखा है-

“श्रद्धा- ‘ईश्वरसत्यधर्मादिगुणानामुपर्यत्यन्तं विश्वासः श्रद्धा।’ जो ईश्वर और सत्य-धर्म आदि शुभ गुणों में निश्चय से विश्वास को स्थिर रखना है, उसको ‘श्रद्धा’ जानना।

अश्रद्धा- ‘अनीश्वरवादाधर्माद्युपरि सर्वथा ह्यनिश्चयोऽश्रद्धा।’ अर्थात् अविद्या, कुतर्क, बुरे काम करने, ईश्वर को नहीं मानने और अन्याय आदि अशुभ गुणों से सब प्रकार से अलग रहने का नाम ‘अश्रद्धा’ समझना चाहिए।”

ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या करने के पश्चात् महर्षि ने इसी विषय का प्रतिपादन करते हुए यजुर्वेद (१६.७७) के प्रसिद्ध मन्त्र-

‘दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।

अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धासत्ये प्रजापतिः।।’ को उद्धृत कर इसकी व्याख्या की है। इस मन्त्र में भी ‘श्रद्धाम्’ और ‘अश्रद्धाम्’ दोनों पद पढ़े गए हैं। महर्षि ने इन पदों की व्याख्या करते हुए लिखा है -

‘प्रजापतिः परमेश्वरो धर्ममुपदिशति’ अर्थात् ईश्वर मनुष्यों के लिए धर्म का उपदेश करता है-

“(अश्रद्धाम्०) सर्वेषां मनुष्याणामनृतेऽसत्ये अधर्मेऽन्यायेऽश्रद्धां कर्तुमाज्ञापयति, तथैव वेदशास्त्रप्रतिपादिते सत्ये प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः परीक्षिते पक्षपात रहिते न्याय्ये धर्मे प्रजापतिः सर्वज्ञ ईश्वरः श्रद्धां चादधात्। (अश्रद्धाम्०) हे मनुष्य लोगो! तुम सब दिन अनृत अर्थात् झूठ, अन्याय के करने में अश्रद्धा अर्थात् प्रीति कभी मत करो। वैसे ही (श्रद्धाम् सत्ये०) सत्य अर्थात् वेदशास्त्रोक्त और जिसकी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परीक्षा की गई वा की जाए, वह पक्षपात से अलग न्यायरूप धर्म है, उसके आचरण में सब दिन प्रीति रखो।”

उक्त बातों पर विचार करने से हमारी समझ में यह आता है कि जीवन के उत्थान के लिए श्रद्धा के साथ-साथ अश्रद्धा का पालन भी आवश्यक है। जैसे सत्य में श्रद्धा आवश्यक होती है, वैसे असत्य में- असत्य के प्रति अश्रद्धा भी आवश्यक होती है। जैसे सद्गुणों के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए, वैसे दुर्गुणों के प्रति अश्रद्धा का होना भी आवश्यक है।

इसी वैदिक भाव को महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में ‘वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।’ (२.३३) सूत्र के माध्यम से प्रकट किया है। जो अनिच्छनीय हैं, अनादर्श हैं, योग में बाधक हैं, उनके प्रति अप्रीति का भाव होना- अश्रद्धा होना प्रतिपक्ष भावना है।

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। — महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश— सब मनुष्य एक सर्वव्यापक ईश्वर के उपासक बनें और अपने जीवन को स्वस्थ रखने के लिए उसी से प्रार्थना करें।

दध्यङ् इथर्वणः ऋषिः। बृहस्पति ईश्वर देवता। निचृत्पङ्क्तिः छन्दः।

पंचमः स्वरः॥ अथेश्वरप्राथनाविषयमाह

अब ईश्वर प्रार्थना का उपदेश किया जाता है।

ओ३म्— यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृष्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥॥ यजु० ३६/२।

पदार्थः—(यत्) (मे) मम (छिद्रम्) न्यूनत्वम् (चक्षुषा) नेत्रस्य (हृदयस्य) (मनसः) अन्तःकरणस्य (वा) अतितृष्णम् अतिहिंसितं = व्याकुलत्वम् (बृहस्पतिः) बृहतामाकाशावीनां पालक ईश्वरः (मे) मह्यम् (तत्) (दधातु) पुष्पातु (शम्) (नः) अस्मभ्यम् (भवतु) (भुवनस्य) भवन्ति भूतानि यस्मिस्तस्य (यः) (पतिः) पालकः स्वमीश्वरः।

सपदार्थान्वयः—(यत्) (मे) मम (चक्षुषा) नेत्रस्य (हृदयस्य) छिद्रम्। न्यूनत्वं (मनसः) अन्तःकरणस्य (वातितृष्णम्) अतिहिंसितं = व्याकुलत्वम् अस्ति (तद्) (बृहस्पतिः) बृहतामाकाशावीनां पालक ईश्वरः (मे) मह्यम् (दधातु) पुष्पातु (नः) (भुवनस्य) भवन्ति भूतानि यस्मिस्तस्य (पतिः) पालकः स्वमीश्वरः अस्ति, स (नः) अस्मभ्यम् (शम्) भवतु।

भाषार्थः—(यत्) जो (मे) मेरी (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय की (छिद्रम्) न्यूनता (वा) अथवा (मनसः) अन्तःकरण की (अतितृष्णम्) अति व्याकुलता है, (तत्) उसे (बृहस्पतिः) महान आकाश आदि का पालक ईश्वर (मे) मेरे लिए (दधातु) पुष्ट करे और जो (भुवनस्य) संसार का (पतिः) पालक ईश्वर है, वह (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (भवतु) (भवतु) होवे।

भावार्थः—सर्व मनुष्यैः परमेश्वरस्योपासनया ज्ञापलनेन च हिंसा धर्म जितेन्द्रियत्वं सम्पादनीयम्।

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर की उपासना और आज्ञा पालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार करके जितेन्द्रियता को प्राप्त करें।

अन्यत्र व्याख्यात—हे सर्वसन्ध्याय केश्वर! मेरे (चक्षु= नेत्र, हृदय = प्राणात्मा मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय, इनके छिद्र निर्बलत्व राग, द्वेष, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार उनका निवारण (निर्मूल) करके सत्य धर्मादि में स्थापन आप ही करें। क्योंकि आप ही बृहस्पति = सबसे बड़े हो। सो अपनी बड़ाई की ओर देखकर इस बड़े काम को आप अवश्य करें। जिससे हम लोग आप की आहण के सेवन में यथार्थ तत्पर रहें। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढाके॥

आप सब भुवनों के पति हैं। इसीलिए आपसे बारम्बार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों।

हे परमात्म! आपके बिना हमारा कल्याणकार कोई नहीं है। हमको आप का ही भरोसा है, सो आप ही पूरा करें।

(आर्याभिविनय 2/39)

(“दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर” से उद्धृत,

व्याख्याता—स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

अधर्म से अर्जित धन के भयंकर दुष्परिणाम

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।

शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्भूलानि कृन्तति ॥

(मनु० ४। १७२)

अर्थ—किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता, परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता। इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते। तथापि निश्चय जानो कि अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है। इसी क्रम से अधर्मोन्मथते वाक्तातो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

(मनु० ४। १७५)

अर्थ—जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसे तालाब के बन्ध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है, वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन और विश्वासघातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है। पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खानपान वस्त्र, आभूषण, यांन, स्थान, मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ काटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे अधर्मी नष्ट हो जाता है।

(सत्यार्थचतुर्थ समु०)

आजकल अधर्मात्मा अधर्म से अर्जित धन से बढ़ते दिखाई दे रहे हैं और धर्मात्मा दुःखी हो रहे हैं। फिर क्या हमें धर्माचरण करना छोड़ देना चाहिये, ऐसी आशंका करने वालों को महर्षि मनु सावधान कर रहे हैं कि अधर्म से अर्जित धन की चार गति होती हैं —

(१) अधर्म से अर्जित धन प्रारम्भ में मनुष्य को बढ़ाता है।

(२) तत्पश्चात् खान-पान, वस्त्र, आभूषण तथा मान-प्रतिष्ठा प्राप्त कर देता है।

(३) तत्पश्चात् कोठी, बंगले, कार, मोटर, गाड़ियाँ

भी प्राप्त कर लेता है।

(४) तत्पश्चात् धन के बल से अपने शत्रु=विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

(५) तत्पश्चात् मूल कटे वृक्ष की भाँति समूल नष्ट हो जाता है। इसीलिये धर्मात्मा पुरुषों को अधर्म की उपर्युक्त दशाओं को देखते हुए भी समूल नाश से भयभीत रहकर धर्माचरण का त्याग कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये। महर्षि दयानन्द व वेदज्ञ महर्षि मनु की चेतावनी हमें सदा ध्यान रखनी चाहिये। क्योंकि महर्षि ने गीता का एक वाक्य देकर हम सब को उद्बोधन किया है—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥

(गीता)

यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि जो-जो विद्या और धर्म-प्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् परिणाम में अमृत के सदृश होते हैं।

अधर्म के दुष्परिणामों को समझाते हुए आर्यसमाज के धुरन्धर विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने एक कहानी देकर समझाने का प्रयास किया है। आशा है कि पाठक उससे लाभ उठाकर धन्यवाद करेंगे—पंजाब के लाहौर नगर में एक हलवाई रहता था, वह प्रतिदिन एक रुपये का दूध लाकर बेचा करता था और उससे अपने परिवार को पालता था। वह धार्मिक वृत्ति का होने से दूध में पानी न मिलाकर खालिस दूध बेचता था। उससे दो आने का लाभ मिलता था, उनसे ही अपना निर्वाह करता था। वह बहुत दिनों तक ऐसे ही गुजारा करता रहा। एक दिन उसके मन में विचार आया कि यदि दूध में एक लोटा पानी मिलाया जाये तो किसी को पता भी न लगेगा और मुझे अधिक लाभ होने से परिवार का जीवन सुखमय बन जायेगा।

हलवाई को पानी मिला दूध बेचने से अब दो आने की जगह साढ़े तीन आने प्राप्त होने लगे। धीरे-धीरे

हलवाई का धन बढ़ने से धन-सम्पन्न हो गया। उस हलवाई के सामने एक-दूसरा हलवाई दूध का कार्य करता था और वह अत्यन्त धार्मिक वृत्ति का होने से सामने वाले हलवाई के कार्य से अत्यन्त दुःखी था। जब कोई साधु-महात्मा उसके यहां आये तो उनसे यही कहता रहता था—परमात्मा के न्यायालय में कुछ न्याय नहीं है। वे पूछते—यह क्या कह रहे हो, परमात्मा तो बहुत न्यायकारी है, वह सब मनुष्यों के पाप-पुण्यों का फल देकर अपनी व्यवस्था में रखता है।

हलवाई बोला—महाराज ! आपके कहने से मैं मान लेता हूँ, परन्तु संसार में हम देख रहे हैं कि जो मनुष्य पाप करते हैं, ईश्वर की आज्ञा को तोड़ रहे हैं वे उत्तरोत्तर फलते-फूलते हैं और धर्मात्मा कष्ट पाते हैं और लोग यही कहकर चल देते हैं कि हम क्या करें, यह सब उसकी ही माया है कि कोई मौज से रह रहे हैं और कोई दुःख पा रहे हैं।

एक बार एक साधु घूमते-फिरते उस नगर से बाहर एक बगीचे में ठहर गए। नगर से सब लोग उनके दर्शनों के लिये जाने लगे और उनसे आत्म कल्याण का उपदेश प्राप्त करने लगे। उस साधु की बात इस हलवाई ने भी सुनी और यह भी साधु के दर्शन करने के लिये बगीचे में पहुँचा। और दूसरों की भाँति इसने भी अपने मन की व्यथा साधु से बताई कि संसार में कोई न्याय व्यवस्था नहीं दिखाई देती क्योंकि हम देखते हैं कि पापी मनुष्य मौज उड़ा रहे हैं और धर्मात्मा दुःखी हो रहे हैं।

साधु ने भक्त की बात ध्यान से सुनी और उसे समझाने का प्रयास भी किया। परन्तु साधु की बात से असहमति प्रकट करते हुए भक्त बोला—महाराज ! मुझे कैसे विश्वास हो जब कि मैं अपने सामने पानी मिलाकर दूध बेचने वाले को लखपति तथा सुख सम्पन्न देख रहा हूँ और मैं दूध बेचता हुआ बूढ़ा हो गया हूँ। दूध में एक बूँद पानी नहीं मिलाता और मेरी और उसकी दशा में आकाश-पाताल का अन्तर है। मुझे ईश्वर की व्यवस्था पर लेशमात्र भी विश्वास

नहीं हो रहा है कि वह न्यायकारी है और सबको पाप-पुण्य का फल ठीक-ठीक दे रहा है।

साधु—बताओ क्या वह हलवाई सुखी है ?

हलवाई—पहले वह भोजन बहुत कष्ट से पाता था, परन्तु आजकल वह धन की वृद्धि से मौज कर रहा है।

साधु—भाई परमात्मा तो उसे धन दे रहे हैं। थोड़े दिनों में देखना कि उसका स्वभाव पैसे के कारण बिगड़ जायेगा और इच्छायें बढ़ने से धन भी न रहेगा। वह रोगी हो जायेगा, दवा के बिना दुःखी रहेगा।

हलवाई—हमें कैसे विश्वास हो कि उसके पास धन न रहेगा और वह दुःखी हो जायेगा।

साधु—क्या तुम बता सकोगे कि वह कितनी पानी प्रतिदिन दूध में मिलाता है और अब तक कुल कितनी पानी मिलाया है ?

हलवाई—हिसाब लगाकर वर्ष, मास व दिन गिनकर बोला अब तक उसने दूध में पांच हजार लोटे जल मिलाया है।

साधु—यहाँ सामने मनुष्य के बराबर एक गहरा गड्ढा खुदवाओ और उसमें पांच हजार लोटे पानी डालो।

हलवाई—महाराज ! ठीक है मैं वैसा ही करता हूँ। भूमि में एक गड्ढा खुदवाता है और साधु के कहने पर उसमें पांच हजार लोटे पानी डालता है।

साधु—अच्छा अब इसमें खड़े होकर दिखाओ। जब वह पानी में खड़ा हुआ तो देखा पानी छाती तक आ गया है। साधु बोला—अभी थोड़ी प्रतीक्षा करो, जब पानी शिर तक आ जायेगा तो पाप का घड़ा भर जायेगा। वह लोटे की गिनती करता रहा, जब उसके अनुसार पानी पूरा हो गया तब उसकी दुकान में सहस्रैव आग लग गई और उसकी सब पाप की कमाई नष्ट हो गई।

तब वह हलवाई सन्तुष्ट होकर बोला—महाराज ! अब मुझे विश्वास हो गया है कि परमात्मा का न्याय शाश्वत व सत्य है वह सभी को पाप-पुण्य का ठीक-ठीक फल दे रहा है। ठीक कहा है—सत्य ही परमधर्म है।

(राजवीर शास्त्री)

शिक्षक, शिक्षा और समाज (धर्मपाल आर्य)

पिछले माह ५ सितम्बर को पूरे देश ने शिक्षक-दिवस मनाया। उपरोक्त विषय पर दूरदर्शन पर कॉफी चर्चा-परिचर्चा हुई। अखबारों में उपरोक्त विषय पर समाचार प्रकाशन के साथ-साथ आलेख भी प्रकाशित हुए। मैं जब इस विषय पर लिखने लगा, तो हमारे एक मित्र बोले कि ५ सितम्बर के बाद आप इस विषय पर क्यों लिख रहे हैं? अब इसकी क्या प्रासङ्गिकता है? मैंने उनके प्रश्न पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा- “क्या किसी विषय पर लिखना या चर्चा तभी प्रासङ्गिक होता है, जब उसको मनाया जाता है या जब उसका दिवस होता है? हमारे देश में यह एक फैशन सा बन गया है कि जब कोई पर्व हो अथवा कोई प्रसिद्ध दिवस हो तो उस पर खूब चर्चा होती है, उसकी प्रासङ्गिकता पर बड़े-बड़े लेख लिखे जाते हैं लेकिन जैसे वह पर्व या दिवस गया, तो उसके साथ ही उसकी प्रासङ्गिकता या उपयोगिता भी बीत जाती है। मैं ऐसा मानता हूँ कि कोई पर्व हो अथवा कोई प्रसिद्ध दिवस उसकी प्रासङ्गिकता और प्रेरणा सदा बनी रहती है। ५ सितम्बर शिक्षक-दिवस के रूप में हर वर्ष मनाया जाता है; जिनकी स्मृति में इस दिन को शिक्षक-दिवस के रूप में मनाया जाता है, वे हैं महान् शिक्षाविद् और विद्वान् डॉक्टर राधाकृष्णन सर्वपल्ली। आप भारत के दूसरे राष्ट्रपति थे। इतने महत्वपूर्ण और व्यस्ततम पद पर सुशोभित होने के बाद भी आपका अध्ययन और अध्यापन से सम्बन्ध यथावत् बना रहा; इसी का परिणाम है आपके जन्म-दिवस ने शिक्षक-दिवस का रूप लिया। शिक्षा समाज व राष्ट्र की नींव है। जितना यह सत्य है कि जिस इमारत की बुनियाद जितनी मजबूत होगी, वह इमारत भी उतनी ही मजबूत होगी। उससे भी अधिक सत्य यह है कि जिस समाज की व राष्ट्र की शिक्षा जितनी सुदृढ़ और व्यापक होगी, वह समाज और राष्ट्र उतना ही अधिक सुदृढ़ और सशक्त होगा। उपरोक्त कथन से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि उस महान् शिक्षाविद्

का अपने जन्म दिन को शिक्षा जगत् के लिए समर्पित करने का उद्देश्य क्या था, उनका चिन्तन था कि इस देश का शिक्षक समृद्ध बने, इस देश की शिक्षा समृद्ध बने और समृद्ध शिक्षक समृद्ध शिक्षा से एक समृद्ध समाज, समृद्ध राष्ट्र, समृद्ध युवा, समृद्ध जीवन व समृद्ध परिवार का निर्माण हो। शिक्षक, गुरु, अध्यापक, आचार्य आदि चारों शब्द एक ही अर्थ और उद्देश्य को परिभाषित करते हैं। निरुक्त में आचार्य यास्क ने आचार्य शब्द की अत्यन्त सटीक और व्यावहारिक परिभाषा दी है और जो परिभाषा आचार्य की दी है वही परिभाषा शिक्षक की है, वही परिभाषा गुरु की है और वही परिभाषा अध्यापक की भी है। निरुक्त में कहा है कि “आचार्य कस्मात्? आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति बुद्धिमिति वा।” अर्थात्- आचार्य कौन? गुरु कौन? शिक्षक कौन? अध्यापक कौन? एक ही प्रश्न के तीन उत्तर आचार्य यास्क देते हुए कहते हैं कि आचार्य, शिक्षक, गुरु और अध्यापक उसे कहना चाहिए, जो अपने शिष्य को सदाचार का ग्रहण कराये, आचार्य, शिक्षक, गुरु, पदार्थों (भिन्न-भिन्न विषयों) का ज्ञान कराये और आचार्य उसे कहना चाहिए जो अपने शिष्य की बुद्धि को पवित्र करे एवं उसमें वृद्धि करे। आचार्य, गुरु, शिक्षक और अध्यापक इनकी वास्तविक समृद्धि क्या है? क्या अर्थ (धन)? नहीं! तो क्या? इनकी असली समृद्धि है- विद्या, सच्चारित्र्य, सदाचार, सादगी और सात्विकता, स्वाध्याय और साधना, सद्विचार और सर्वाङ्गीण विकास। इतनी समृद्धियों से समृद्ध आचार्य, गुरु, शिक्षक, अध्यापक एक समृद्ध राष्ट्र का, समृद्ध समाज का और समृद्ध युवा पीढ़ी का निर्माण करने में सक्षम होंगे, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। मुझे यह बड़े खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि हमारी आज की शिक्षा में शिष्टता का, सदाचार का, सच्चारित्र्य का, मानवता का और सामञ्जस्य

का अत्यधिक अभाव है। “विद्ययाऽमृतमश्नुते” अर्थात् विद्या से मनुष्य अमृत को प्राप्त करता है।

विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।

विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्या विहीनः पशुः।
अर्थात् विद्या अथवा शिक्षा मनुष्य को सांसारिक भोग, यश और सुख प्रदान करती है। विद्या अथवा शिक्षा गुरुओं की गुरु है। राज्य में भी धन की नहीं, अपितु विद्या की पूजा होती है। जो विद्या अथवा शिक्षा से हीन है, वह पशु के समान है।

रूप यौवन सम्पन्नाः विशाल कुल सम्भवाः।

विद्याहीनाः न शोभन्तेः निर्गन्धाः इव किंशुकाः॥
अर्थात् व्यक्ति भले ही रूप से, यौवन से सम्पन्न हो और भले ही विशाल कुल में पैदा हुआ हो परन्तु वो यदि विद्या से/शिक्षा से हीन है, तो बिना गन्ध वाले ढाक के फूल की भाँति समाज रूपी उपवन में शोभा नहीं पाता। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं, “यही माता, पिता का कर्तव्य कर्म परम धर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से, विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा से युक्त करना। महर्षि ने शिक्षा प्रणाली में जिन तत्वों (धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा) की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया है, उनका शतांश भी हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में नहीं है। हमारी शिक्षा की सबसे बड़ी विडम्बना देखिए कि वो संस्कारों से, गुणों से, सदाचार से, सभ्यता से और मानवता से दूर सी होती जा रही है। दुनियाँ में हमारे देश की पहचान का सबसे बड़ा कारण यह था कि सभी देशों के लोग यहाँ चरित्र और सदाचार की शिक्षा प्राप्त करने आते थे। तभी मनु को कहना पड़ा -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् प्रथिव्यां सर्वमानवाः।

अर्थात्- पृथिवी के लोग इस आर्यावर्त से अपने-अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने आते थे। भारतवर्ष पूरी दुनिया के आध्यात्मिकता का केन्द्र होता था। इस कारण इसे दुनिया का आध्यात्मिक गुरु भी माना जाता था। आज पुनः उसी शिक्षा की/विद्या की आवश्यकता है। शिक्षक-दिवस पर यह आत्ममन्थन अपरिहार्य हो गया

है कि वर्तमान शिक्षक और वर्तमान शिक्षा हमारी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को कितनी दृढ़ता प्रदान कर रहे हैं अथवा कर सकते हैं। आज हम सबको यह भी गहन चिन्तन की आवश्यकता है कि हमारी शिक्षा हमारे समाज के नवनिर्माण में किस प्रकार कारगर सिद्ध हो सकती है। यह निर्विवाद सत्य है कि बिना शिक्षा के उन्नत समाज, सभ्य समाज, मानवता से ओत-प्रोत समाज तथा एक समृद्ध समाज का निर्माण सम्भव नहीं है। वस्त्र, भोजन, जल, वायु आवास आदि समाज की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। उसी प्रकार समाज को समृद्ध बनाने के लिए विद्या की, शिक्षा की आवश्यकता होती है। हमारा सामाजिक दर्शन शिक्षा की नींव पर टिका हुआ है। हमारे मनीषियों ने, ऋषियों महर्षियों ने, मनस्वियों ने, तत्ववेत्ताओं ने और महापुरुषों ने जिस समाज की कल्पना की थी, उसका निर्माण बिना शिक्षा के, बिना विद्या के सम्भव नहीं है। हमारे समाज का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि जिस शिक्षा की आज हमारे समाज को आवश्यकता है आज उसका अभाव ही है। आज हम सब यह संकल्प लें कि हमारे समाज में और हमारे राष्ट्र में उस शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार प्रसार हो, जिससे समूचे विश्व में मानवता की, विश्व-बन्धुत्व की, उच्च आदर्शों की छटा बिखरे। राधाकृष्णन सर्वपल्ली जी को उनके जन्मदिवस पर असली श्रद्धांजलि तभी होगी, जब हमारी शिक्षा प्रणाली आदर्शों तथा मानवीय मूल्यों पर आधारित हो तथा राजनीति के दुष्प्रभाव से मुक्त हो। शिक्षक, शिक्षा और समाज तभी समृद्ध होंगे, जब हमारी राजव्यवस्था दुराग्रह और दुर्भावना से ऊपर उठकर शिक्षा को चरित्राधारित, सभ्यताधारित और उच्च आदर्शों पर आधारित बनाएं। हमारा समाज तभी समृद्ध बनेगा, जब हमारी शिक्षा समृद्ध होगी, हमारी शिक्षा तब समृद्ध होगी, जब शिक्षा देने वाले हमारे शिक्षकगण समृद्ध होंगे। यदि तीनों समृद्ध बन जायें, तो मैं समझता हूँ कि उस महान् शिक्षाविद् एवं दार्शनिक श्री राधाकृष्णन सर्वपल्ली जी को सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी। आओ, हम सब इस दिशा में प्रयास करते हुए राष्ट्रनिर्माण के अभियान को एक नई गति और एक नई ऊर्जा प्रदान करें।



योगदर्शन में क्लेशों की दशाएं

(उत्ता नेरुकर, बंगलौर, मो.- ०६८४५०५८३९०)

पिछले माह मैंने चित्तवृत्तियों की क्लिष्टता और अक्लिष्टता पर चर्चा प्रस्तुत की थी। इस बार मैं इन क्लेशों के एक और आयाम को प्रस्तुत कर रही हूँ। इस विषय में भी भाष्यार्थ में थोड़ा सन्देह उत्पन्न होता है। उसका समाधान देने का मैंने प्रयत्न किया है।

तद्विषयक सूत्र है-

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।।

१/४ ।।

अर्थात् पाँच क्लेशों की चार अवस्थाएं होती हैं- प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, और उदार।

व्यास मुनि ने इनको इस प्रकार समझाया है-

१) प्रसुप्त- जब क्लेश कार्यान्वित नहीं होता और चित्त में शक्तिमात्र रूप में स्थित होता है और विषय के (तीव्रतया) सम्मुख आने पर उजागर हो जाता है। यह स्थिति विवेकख्याति के उपरान्त होने वाली दशा से भिन्न है, क्योंकि विवेकख्याति में क्लेश दग्धबीज हो जाते हैं, और कितनी भी तीव्रता से विषय उपस्थित हो, वे क्लेश जागृत नहीं हो सकते। इस प्रकार व्यास प्रसुप्त क्लेश वाले और विवेकख्याति-प्राप्त पुरुष में भेद करते हैं।

२) तनु- जो क्लेश अपने को बढ़ाने वाले विचारों में से विपरीत विचारों से उपहत होकर क्षीण हो जाते हैं। अर्थात् ये प्रसुप्त की तरह सोए हुए तो नहीं होते, परन्तु इनके द्वारा पुरुष (=जीवात्मा) में बहुत कम राग-द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं।

३) विच्छिन्न- जो क्लेश बीच-बीच में उठते हैं। यथा- राग के समय क्रोध नहीं होता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि क्रोध छूट गया। या चैत्र जो एक स्त्री में रक्त हो, तो उस समय के लिए अन्य स्त्रियों में रक्त नहीं है, परन्तु अनन्तर हो सकता है (यह व्यास का ही उदाहरण है, मेरा नहीं!)। इस प्रकार दूसरी स्त्री के प्रति इस समय उसका राग विच्छिन्न है जबकि इस स्त्री के प्रति उसका राग 'लब्धवृत्ति' अर्थात् 'उदार', जैसा कि आगे व्यास बताते हैं।

४) उदार- जो क्लेश विषय में लब्धवृत्ति हो, अर्थात् इस समय प्रवृत्त हो। इसके आगे वे और नहीं समझाते।

इसका अर्थ हुआ कि प्रसुप्त और तनु दशाएं तो क्लेशों की स्थायी दशाएं हैं और विच्छिन्न व उदार क्षणिक दशाएं, क्योंकि विच्छिन्न क्लेश अभी दबा है, परन्तु अगले ही क्षण उदार हो सकता है, और उदार विच्छिन्न। यह अस्थायित्व तो सही प्रतीत नहीं होता! और जो विच्छिन्न दशा में इस समय उदार नहीं है, तो वह किस दशा में है? प्रसुप्त अथवा तनु? और यदि वह इनमें से एक दशा में है, तो ये दशाएं भी क्षणिक हो गईं। अर्थात् जो क्लेश अभी प्रवृत्त है, वह उदार है, और जो अभी पृष्ठभूमि में चला गया, वह तनु/प्रसुप्त होने से विच्छिन्न है। अब कोई भी क्लेश, वह हम पर कितना ही हावी क्यों न हो, हर समय तो प्रवृत्त होता नहीं। तो हर क्लेश विच्छिन्न ही हो गया। और फिर विच्छिन्न दशा गिनाने की आवश्यकता ही नहीं है- प्रसुप्त, तनु और उदार से ही काम चल जाएगा। इन सब विरोधाभासों से लगता है कि पतञ्जलि का सूत्र सम्भवतः कुछ और ही कह रहा है।

इस गुल्फी के लिए एक और भी संकेत है-

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणायश्च ।। २/१-२ ।।

सूत्रों में पतञ्जलि ने कहा है कि तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग हैं और इनके आचरण के द्वारा हम क्लेशों को तनु कर सकते हैं, जिससे कि हम समाधि सिद्ध कर सकते हैं। यहाँ तो 'तनूकरण' क्लेशों की स्थायी अवस्था को ही कह सकता है, क्योंकि उपर्युक्तानुसार अस्थायी अवस्था तो हमें अभी से प्राप्त है। यहाँ 'तनूकरण' का अर्थ 'सूक्ष्म करना' लिया गया है, अर्थात् घटाना। यह सम्यक् भी लगता है, क्योंकि क्लेशों से मुक्ति क्षणभर में तो नहीं हो जायेगी, उन्हें धीरे-धीरे ही घटाना पड़ेगा। फिर शब्द-साम्य से और प्रसंग से भी, चौथे सूत्र में दी हुई अवस्थाएं स्थूल

(उदार) से सूक्ष्म (प्रसुप्त) की ओर जाने वाली होंगी। अर्थात् चौथे सूत्र में भी क्लेशों की स्थायी अवस्थाएं हैं, जो कि तनूकरण से प्राप्त होती हैं।

जब यह निष्कर्ष निकल आया, तो हमें इस प्रकाश में इन अवस्थाओं को समझना होगा। यदि स्थूलावस्था से प्रारम्भ करें, तो विश्लेषण कुछ इस प्रकार होगा-

१) उदार- यह क्लेश की वह अवस्था है, जिसमें क्लेश हम पर हावी होता है, जिसे जुनून कहा जाता है। हमारा अधिकतर समय इस क्लेश के पोषण में निकल जाता है- चाहे विचार से, या वाणी से या शरीर से। पुनः, यहाँ यह समझना आवश्यक है कि जुनून कितना भी गहरा हो, वह चौबीसों घंटे हम पर सवार नहीं हो सकता। परन्तु इससे वह 'विच्छिन्न' नहीं हो जाता, उसे उदार ही माना जायेगा।

२) विच्छिन्न- इस अवस्था में क्लेश में थोड़ी दूरारें आ जाती हैं। जैसे, यदि हम किसी खेल में रुचि रखते हैं, तो हम उस पर अधिक समय व्यय करते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम अन्य कार्यों में रुचि रखते ही नहीं, जैसा कि जुनून में होता है। हमारी शक्ति अनेकों क्लेशों में बंटी होती है, जिससे कि कोई भी क्लेश उदार दशा में नहीं होता। अधिकांश लोगों के क्लेश इसी अवस्था में होते हैं।

३) तनु- अब क्रियायोग के द्वारा हम क्लेशों को घटाना प्रारम्भ करते हैं। जिन वस्तुओं में हमारा राग-द्वेष है, उनके प्रति हम तप से राग-द्वेष को कम करके विरक्ति की भावना उत्पन्न करते हैं, स्वाध्याय के द्वारा अविद्या को कम करते हैं और मोक्ष में रुचि बढ़ाते हैं (यह रुचि राग के अन्तर्गत नहीं आती!), और ईश्वरप्रणिधान के द्वारा अस्मिता (अहंकार) को कम करके प्रभु के प्रति समर्पण भाव बढ़ाते हैं। इन सभी से मिलकर, सत्य-ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है और अभिनिवेश क्लेश भी टलने लगता है।

४) प्रसुप्त- तनु करते-करते, क्लेश इस अवस्था में पहुँच जाते हैं, जहाँ वे हमें समाधि में व्यथित करने में असमर्थ हो जाते हैं। जैसा व्यास ने कहा, वे दग्धबीज तो नहीं होते, क्योंकि वह अवस्था तो केवल विवेक-ख्याति के होने पर ही होती है, परन्तु वे इतने

क्षीण हो जाते हैं कि विषय के उपस्थित होने पर जागृत नहीं होते। तथापि बहुत बड़े प्रलोभन में वे उजागर हो भी सकते हैं, जैसे कि हम विश्वामित्र और मेनका की कथा में सुनते आए हैं।

इस प्रकार क्लेशों की ये दशाएं क्षण-क्षण में एक-दूसरे से बदलती नहीं हैं, अपितु स्थिर रहती हैं, चाहे कोई क्लेश-विशेष इस समय लब्धवृत्ति हो या नहीं।

इस विषय में आगे के दो सूत्र भी प्रासंगिक हैं।

“ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः॥२/१०॥”

अर्थात् क्लेशों का हर उभरना दबाने योग्य है और (इससे) वे सूक्ष्म हो जाते हैं। इससे भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि क्लेशों को पूर्व-कथित क्रियायोग द्वारा दबाना चाहिए, जिससे कि वे सूक्ष्म हो जाएं। यह सूक्ष्मावस्था ही 'तनु' और 'प्रसुप्त' के द्वारा कही गई है। सो, 'विच्छिन्न' और 'उदार' स्थूलावस्थाएं हुईं। इसका यह अर्थ भी हुआ कि विच्छिन्न दशा में क्लेश कभी उदार और कभी तनु नहीं हुआ करते- वे विच्छिन्न ही रहते हैं।

“ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः॥ २/११॥”

अर्थात् उन वृत्तियों को ध्यान से समाप्त करना योग्य है। पतञ्जलि ने यह क्लेशों को दबाने का दूसरा उपाय दिया है- ध्यान अर्थात् समाधि के पूर्व की स्थितियाँ। यह ध्यान वही है, जो पहले पाद में पतञ्जलि ने इस प्रकार बताया था-

तत्र स्थितौ यत्तोऽभ्यासः॥ १/१३॥

यह चित्त की वृत्तियों को रोकने के एक उपाय के रूप में बताया गया था-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ १/१२॥ (आश्चर्य की बात है कि २/११ में पतञ्जलि ने क्लेशों को वृत्तियाँ ही कहा है ! यह एक संकेत है कि वस्तुतः क्लेश और वृत्ति में नाममात्र का अन्तर है। इस विषय में नीचे और लिखेंगे।) इसी प्रकार, प्रथम पाद में कहा गया-

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसञ्ज्ञा वैराग्यम्॥१/१५॥

अर्थात् देखे हुए और सुने हुए विषयों में भोग-प्रवृत्ति न होने से चित्त का वश में आ जाना वैराग्य है। यहाँ पर भोग-प्रवृत्ति कैसे कम या नष्ट करनी है?

“ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः” से- उनके हर उभरने

को दबाने से।

वस्तुतः, २/१० और २/११ वही बात कह रहे हैं, जो कि १/१२, १/१३ व १/१५ में कही गई थी। जहाँ २/११ स्पष्टतः चित्त की एकाग्रता के अभ्यास को कह रहा है, वहाँ २/१० भी वैराग्य को ही कह रहा है। इसके आगे हमको पहले पाद से प्रक्रिया का ग्रहण करना है, जबकि इस पाद में आगे पतञ्जलि अन्य सिद्धान्तों को समझाने में लग जाते हैं। यही इन दो पादों का जोड़ है।

अब जब बात छिड़ ही गई है, तो यह भी देखना आवश्यक हो जाता है कि क्लेश और वृत्ति क्या एक ही हैं या नहीं?

“वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥११/१५॥” में तो क्लिष्टता को वृत्ति का विशेषण घोषित किया गया था। अब २/११ में क्लेश को ही वृत्ति कह रहे हैं! इस बात को एक क्लेश लेकर समझने का प्रयत्न करते हैं-

सुखानुशायी रागः ॥१२/७॥- अर्थात् सुख कारण है राग का। संसार में जो सुख अनुभव होता है, उससे उसके प्रति इच्छा उत्पन्न होती है। उस इच्छा का नाम राग है। सूत्र के भाष्य में महर्षि दयानन्द ने कहा है, “तीसरा राग, अर्थात् जो-जो सुख संसार में साक्षात् भोगने में आते हैं, उनके संस्कार की स्मृति से जो तृष्णा के लोभ सागर में बहना है, इसका नाम राग है।” इसका अर्थ यह हुआ कि राग में स्मृति का समावेश है, जो कि चित्त-वृत्तियों के अन्तर्गत गिनी ही गई है। मेरे अनुसार तो इच्छा करना भी चित्त की ही वृत्ति है, जो कि

“विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥११/८॥” से विपर्यय-वृत्ति है, जैसा कि मैंने अपने पूर्व लिखे एक लेख में दर्शाया था। तथापि विद्वान् इच्छा-वृत्ति और द्वेष-वृत्ति को अपने मतानुसार जिधर डालना चाहें डाल सकते हैं। मूल बात यह है कि ये इच्छायुक्त अथवा द्वेषयुक्त वृत्तियाँ हैं। व्यास स्वयं कहते हैं,

क्लेशा इति पञ्च विपर्ययाः ॥ व्यासभाष्य २/३॥ तथापि जैसा मैंने पिछले माह के लेख में दर्शाया था, क्लिष्ट वृत्तियाँ विपर्यय को छोड़कर अन्य भी होती हैं।

वस्तुतः, जिस भी चित्तवृत्ति में अज्ञान/अविद्या का समावेश होगा, वह क्लिष्ट = दुःखदायी हो जायेगी। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत कर रही हूँ, जिससे कि यह थोड़ा और स्पष्ट हो जाए। हमारे मन में यदि सत्ता की इच्छा जागृत होती है, तो उसका अर्थ है कि हम मन में सत्ता पाने के उपाय सोचते हैं। यह ‘सोचना’ चित्तवृत्ति है। इसमें जो सत्ता के प्रति राग है, वह क्लेश है। लेकिन क्या राग की सोच से भिन्न कोई सत्ता है? इसको हम ज्ञान और विचार के समान समझ सकते हैं। जबकि कोई भी ज्ञान हमारे मस्तिष्क में बैठे हुए भी, हर पल हमारे विचार में नहीं होता, परन्तु उससे सम्बद्ध विचार के उठते ही, स्मृति से उस विषय का ज्ञान भी उपस्थित हो जाता है। जैसे, जब हम बस को देखते हैं, तो अगले किस अड्डे पर रुकेगी, इसका विचार अनायास ही हमारे मन में आ जाता है। इसी प्रकार क्लेश हमारे अज्ञान हैं, जो कि प्रतिक्षण उपस्थित नहीं होते, परन्तु जब उनसे सम्बद्ध विचार मन में आता है, तब वे उस विचार को अपने रंग से रंग देते हैं। जैसे, जब हम अपनी पुत्री को देखते हैं, तो अनायास ही हमारे मन में उसके प्रति मोह उमड़ पड़ता है।

जिसके क्लेश नष्ट हो गए हों, वह यदि राजा बनने की इच्छा भी करेगा, तो प्रजा के हित के लिए करेगा, अपने लिए नहीं, जिस प्रकार स्वामी दयानन्द राज-दरबारों में राजाओं को प्रवचन देते थे- अपने मान के लिए नहीं, अपितु प्रजा के हित के लिए।

ऊपर में मैंने पतञ्जलि के सूत्रों का बुद्धिपरक विश्लेषण दे दिया है, परन्तु जिसने भी इनको थोड़ा-सा भी अपने जीवन में उतारा है, वह तुरन्त ही अपने विचारों में क्लेशों की सूक्ष्मता का अनुभव स्वयं कर सकता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि क्लेशों की दशाओं के व्यास-भाष्य में किञ्चित् परिवर्तन की आवश्यकता है। और क्लेशों का विश्लेषण करते-करते, हमें ज्ञात होता है कि क्लेशों और वृत्तियों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि कभी-कभी वे एक सी ही लगने लगती हैं। तथापि इन दोनों में वही सम्बन्ध है जो कि ज्ञान और विचार में होता है।

□□

हाय! दिनकर जी क्या लिख गये! (7)

(राजेशार्य आर्ट्स, मो0 ०६६६१२६१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! कुछ मास पूर्व दूरदर्शन पर यह समाचार देखकर मन पीड़ा से भर गया था कि वर्षों तक भारत की बागडोर सम्भालने वाली एक पार्टी के नेता सत्ताविहीन होने पर पाकिस्तान में जाकर पाकिस्तान वालों को कह रहे थे कि मोदी जी को हटाइये और हमें लाइये, तभी कश्मीर-समस्या का समाधान होगा। क्या इसका अर्थ यह लिया जाए कि भारत की राजनीति में कहीं न कहीं पाकिस्तान के मुल्ला-मौलवियों का दखल होता है। उन्हीं के इशारों पर भारत की मुस्लिम जनता किसी को गद्दी से उतारने या बैठाने में अपनी विशेष भूमिका अदा करती है? सोचिये, क्या मोदी जी के आने से पूर्व कश्मीर समस्या नहीं थी? फिर ये तथाकथित समाधानकर्ता पत्थरबाज नेताओं की सुरक्षा आदि पर करोड़ों रुपये क्यों लुटाते रहे?

पाकिस्तान के अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए छटपटाती ब्लोचिस्तान व पाक अधिकृत कश्मीर की जनता के समर्थन में भारत के प्रधानमंत्री की दमदार आवाज उठी, तो कश्मीर-समस्या के तथाकथित समाधानकर्ताओं का भारतविरोधी स्वर भी सुनाई दिया कि ब्लोचिस्तान तो पाकिस्तान का हिस्सा है, भारत इसमें दखल क्यों देता है? इन विचित्र देशभक्तों ने इतनी मुखरता से ये कभी नहीं कहा कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, पाकिस्तान उसमें अलगाववाद व आतंकवाद का जहर फैलाना बन्द करे। कहीं मजहबी-प्रेम देशभक्ति पर भारी तो नहीं पड़ रहा?

सारे संसार को पता है कि आतंकवादी किस मजहब के हैं! फिर भी भारत के तथाकथित सेकुलर व मजहबी प्रचारक हिन्दू जनता की आँख में धूल झाँकने के लिए बयान देते हैं कि आतंकवादी का कोई मजहब नहीं होता। तो फिर आतंकवादी के मारे जाने पर उसे मजहबी तरीके से दफनाया क्यों जाता है? कूड़े के ढेर पर

रखकर जला क्यों नहीं दिया जाता उनके शोक में आँसू बहाने वाले (देशी व विदेशी) किस मजहब के होते हैं?

मेरी शिकायत केवल कांग्रेस (सेकुलर) का चोला ओढ़ने वाले किसी मजहबी नेता से ही नहीं है, अपितु किसी आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले उन लोगों से भी है, जो उपरोक्त नेताओं के कुकृत्यों पर तो मौन धारण कर लेते हैं और हरियाणा के मुख्यमंत्री को पाकिस्तानी कहते हैं। ये लोग भूल जाते हैं कि १४ अगस्त १९४७ से पूर्व आज का पाकिस्तान भारत ही था और पाकिस्तान बनने के बाद माननीय मुख्यमंत्री जी के पूर्वजों ने वहाँ शायद ही कुछ दिन या महीने बिताये हों। जबकि भारत में उनका पूरा जीवन बीता है। वे भारतीय थे, हैं और रहेंगे। तभी तो अपना सब कुछ लुटाकर भारत चले आये। सोचिये, भारतीय कैसा होता है, वोट के लिए देशद्रोह करने वाला या देश-प्रेम में अपना घर बार, मकान, दुकान, खेत खलिहान आदि सब कुछ छोड़कर चलने वाला?

पिछले ६६ वर्ष में पाकिस्तान भारत को प्रतिदिन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घायल करता रहता है। क्या मजहबी समानता के कारण इसका दोष भारत की मुस्लिम जनता (हिन्दू पूर्वजों की सन्तान) को दिया जा सकता है? फिर भारत के मुसलमान विदेशी, लुटेरे व आक्रमणकारी महमूद गजनवी, गोरी, बाबर, तैमूर आदि के अत्याचारों की निन्दा होने पर तिलमिलाते क्यों हैं और उनके नाम पर गर्वित क्यों होते हैं? इनका तो उनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है, क्योंकि गजनवी लूट-मार कर अपने देश वापस चला गया था। उसकी कोई सन्तान भारत में नहीं रही। गोरी निपूता मरा था, दास, खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी, मुगल आदि क्रमशः बाद वालों द्वारा मिटा दिये गये थे। बाबर के पूर्वज तैमूर लंग आदि भारत बार-बार आगजनी, लूट-मार, कत्ले आम व

धर्मपरिवर्तन कर (हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर) अपने देश चले जाते थे। बाबर भी मरने के बाद काबुल चला (दफनाया) गया।

‘औरंगजेब नामा’ में लिखा है कि बाबर के मातृ-पक्ष के पूर्वज चंगेज खाँ आदि मंगोल थे, मुसलमान नहीं। चंगेज खाँ ने मुस्लिम देशों पर भी अत्याचार किये थे। भारत को लूटकर जाते समय (१२२१ ई०) वह हजारों हिन्दू-मुसलमानों को बंदी बना कर अपने साथ ले गया था। जलालुद्दीन खिलजी के समय (१२६२ ई०) मंगोलों (मुगलों) ने भारत पर आक्रमण किया, तो जलालुद्दीन ने उन्हें हराकर चंगेज खाँ के नाती (दोहित्र) को मुसलमान बनाकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह किया और लगभग चार हजार मुगल पुरुष; उनकी पत्नियों एवं बच्चों को भी मुस्लिम बना दिया गया।

अलाउद्दीन खिलजी ने १३०४ ई० में चंगेज खाँ के लुटेरे आक्रमणकारी दोहित्र अली बेग को बंदी बनाकर उसके साथियों सहित मौत के घाट उतरवा दिया था और ८००० मुगलों के कटे सिर किले की दीवार एवं मीनार की गुम्बदों के रिक्त स्थान पूर्ति हेतु प्रयुक्त मिट्टी एवं पत्थरों के स्थान पर डलवा दिये। अगले वर्ष भारत आये लुटेरे मुगल कपक को साथियों सहित पकड़कर अलाउद्दीन ने हाथियों के पीछे घसीटकर मरवाया और उनके सिर काटकर जंगल में मीनार बनवा दी। ५०-६० हजार मुगलों में से जीवित बचे उनके ३-४ हजार स्त्री-बच्चों को हिन्दुस्तान के शहरों में बेच दिया गया। (मुंशी देवी प्रसाद, अनु० डॉ० कृष्णवीर सिंह प्रकाश नारायण नाटाणी पृ० २५-३०)

बाद में बाबर ने भी हिन्दुओं के प्रति वहीं जंगली अत्याचार की नीति अपनाई। फिर भी नेहरू ने उसकी महानता के गीत गाये हैं और हिन्दुओं पर महमूद गजनवी के आक्रमण के अल्बरूनी द्वारा लिखित अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन को ‘भारत की खोज’ में ज्यों का त्यों लिखा है। फिर दिनकर जी भला क्यों पीछे रहते। इन्होंने भी लिख दिया कि हिन्दू धूलकणों के समान उड़ गये और जीवित

लोगों के मुख में उनकी कहानी मात्र शेष रही। (पृ० २६८)

शायद दिनकर जी भी इस सच्चाई को जानते थे कि उच्च (बहावलपुर-पाकिस्तान) पर चढ़ाई के समय (१००७ ई०) महमूद की ‘कीमती जान’ बड़ी मुश्किल से बची थी; आनन्दपाल के साथ लड़ाई (१००८ ई०) में वह हतोत्साहित हो गया था; कश्मीर में (१०२१ ई०) उसे करारी हार मिली थी; सोमनाथ मंदिर की उसकी बहुत सी लूट जाटों ने रास्ते में ही लूट ली थी (१०२६ ई०)। फिर धूल के समान उड़ने वाले हिन्दू आज भी जीवित कैसे हैं?

दिनकर जी ने लिखा है कि अकबर ने मुस्लिम आतंक से पीड़ित हिन्दुओं का पक्ष जिस वीरता से लिया था, जवाहरलाल भी उसी वीरता के साथ मुसलमानों का पक्ष ले रहे हैं। (पृ० ६२८)

यहाँ विचारणीय है कि अकबर ने मुस्लिम आतंकवाद से पीड़ित किस हिन्दू का पक्ष लिया? विधवा रानी दुर्गावती पर आक्रमण कर उसके राज्य को लूटना और स्त्रियों को अपने हरम में डालना क्या पीड़ित हिन्दुओं का पक्ष था? चित्तौड़ के किले को जीतकर ३० हजार हिन्दुओं को कत्ल करवाना क्या हिन्दुओं का पक्ष था? मरते दम तक हिन्दुत्व स्वाभिमान को कुचलने के लिए महाराणा प्रताप व राणा अमरसिंह पर चढ़ाई कर तबाही मचाना क्या- हिन्दुओं का पक्ष था? छोटे-छोटे हिन्दू राजाओं से सुरक्षा (सन्धि) के बदले उनकी बेटियों को मुसलमान बनाकर अपने हरम में डालना क्या हिन्दुओं का पक्ष था?

और जब जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलते हुए पदे-पदे मुसलमानों का पक्ष लिया, तब क्या वे मुसलमान भी अकबर कालीन मुस्लिम आतंक से पीड़ित हिन्दुओं की तरह किसी अत्याचार से पीड़ित थे? फिर दिनकर जी अकबर व जवाहरलाल की तुलना कैसे कर गये? अन्यत्र भी दिनकर जी ने अकबर व गाँधी जी की उदारता को समान बताते हुए लिखा है- “लेकिन, इस देश में जो मुसलमान हिन्दुओं का पक्षपाती

होता है, उसे मुसलमान मार डालते हैं, जैसे औरंगजेब ने दाराशिकोह को मार डाला। और जो हिन्दू मुसलमानों का पक्षपाती होता है, उसे हिन्दू मार डालते हैं, जैसे गोडसे ने गाँधी की हत्या कर दी।” (पृ० ३३०)

इतिहास की सामान्य सी जानकारी रखने वाला व्यक्ति भी जानता है कि औरंगजेब ने अपने भाई दाराशिकोह को हिन्दुस्तान का बादशाह बनने के लिए मारा था, हिन्दू-पक्षपाती होने के कारण नहीं। क्योंकि उसने तो दारा और उसके बेटों के अतिरिक्त शाह शुजा को भी मरवाया था और जिस छोटे भाई मुराद की सहायता से राज्य हथियाया था, उसे भी कैद में डालकर मरवा दिया था। दूसरी तरफ, गोडसे द्वारा गाँधी को मारने का मुख्य कारण पाकिस्तान बाँटकर भी मुस्लिम जनता को भारत रोकना (रखना) और भारत पर आक्रमण कर रहे पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये देने हेतु भारत सरकार पर दबाव बनाने के लिए आमरण अनशन करना था। दोनों घटनाओं में कोई समानता नहीं है। एक ने राज्य प्राप्ति के लिए हत्या की और दूसरे ने राष्ट्रहित को बचाने के लिए विवश होकर यह कदम उठाया। एक को राज्य मिला और दूसरे को फाँसी।

गाँधी-हत्या का असली कारण छिपाने वालों में दिनकर जी भी शामिल हो गये। सत्य को छिपाने का कारण चाहे कुछ भी रहा हो, देश की जनता को अतीत के सत्य से अनभिज्ञ रखकर भविष्य के खतरों के प्रति लापरवाह बनाने के अपराध से उन्हें मुक्त नहीं किया जा सकता। तुलसीदास ने अकबर-जहाँगीर कालीन मुस्लिम अत्याचार का वर्णन नहीं किया है, तो इतने से ही दिनकर जी उस काल को इतना शान्तिभरा नहीं कह सकते कि लोग (हिन्दू) यह भी भूल चुके थे कि मुसलमान विदेशी हैं (पृ० २८८)। क्योंकि तुलसीदास जी दुनियादारी से अलग रहकर राम की भक्ति में मस्त रहने वाले सन्त थे, कोई इतिहासकार नहीं। उन्होंने तो राम के इतिहास को भी भक्ति के रंग में रंगकर आसमान में उड़ा दिया। इस ढंग के बहुत से लोग तो ‘कोउ नृप होय हमें का

हानि’ की मान्यता वाले होते हैं। गुरु गोविन्द सिंह की भेंट होने से पहले बन्दा वैरागी भी माधोदास बना एकान्त जंगल में धूनी रमाए बैठा था। औरंगजेब कितने मन्दिर तोड़ रहा था; कितने मजबूर हिन्दुओं को मुसलमान बना रहा था; कितनी गऊओं का कल्ल कर रहा था, इस सबका उसे कोई पता ही नहीं था। ये अत्याचार इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है, पर उस काल के विलासी कवि बिहारी की कविता में तो नायिका के कामुक नैन-बैन आदि की ही चर्चा है। यदि कवियों की वाणी ही प्रमाण है, तो दिनकर जी ने बाबर के अत्याचारों का वर्णन करने वाली गुरु नानकदेव की वाणी क्यों नहीं लिखी?

अकबरनामा, जहाँगीरनामा आदि में इस बात की खुली साक्षी है कि ये दोनों मुस्लिम बादशाह जीवनभर भारत के राजाओं (हिन्दू मुस्लिम) से युद्ध करते रहे। युद्धों में बन्दी बनाकर लाई गई औरतों को मुसलमान बनाकर इनके कैदखाने (हरम) में रखा जाता था। दूसरी तरफ जहाँगीर-शाहजहाँ ने मुस्लिम लड़की से शादी करने वाले हिन्दू को कठोर (मृत्यु) दण्ड देने की घोषण कर रखी थी। वे तो उन मुसलमान युवकों को भी दण्ड देते थे, जो हिन्दू संन्यासियों के पास जाते थे या हिन्दू धर्म में अपनी आस्था रखते थे। अकबर के काल में ७० प्रतिशत बड़े-बड़े अधिकारी फारसी, तुर्की, उजबेक और अफगानिस्तानी थे। केवल ३० प्रतिशत भारतीय मुसलमान और हिन्दू थे। सरकारी नौकरियों में भी बहुत कम हिन्दू थे। फिर जहाँगीर आदि के काल की क्या कहें! हो सकता है साधारण हिन्दू-मुस्लिम जनता प्रेम से रहती हो (क्योंकि भारतीय मुसलमानों के पूर्वज भी हिन्दू थे), पर इसमें अकबर-जहाँगीर का कोई योगदान नहीं है। जहाँगीर ने तो फिरोजशाह तुगलक के काल में मुसलमान बनाये गये, पर अभी (२०० वर्ष) तक हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन करने व हिन्दुओं के साथ शादी-विवाह करने वाले राजौरी के मुसलमानों को ऐसा न करने के आदेश दिये और उल्लंघन करने वालों को सख्त दण्ड का विधान बनाया था। (जहाँगीरनामा)

इस्लाम भारत में चार सौ वर्ष से था तब भी और

आठ सौ वर्ष से है, अब भी उसकी आस्था विदेशी धरती, विदेशी सभ्यता व विदेशी महापुरुषों के प्रति है। राष्ट्रहित को प्राथमिकता देने वाले सभी भारतीय सम्माननीय है। पर उनको क्यों कहें, जो गाते फिरते हैं-

मेरा दिल तड़प रहा है, मेरा जल रहा है सीना।
किदवा नहीं मिलेगा, मुझे ले चलो मदीना।।
खुसरवी अच्छी लगी न सरवरी अच्छी लगी।
हम फकीरों को मदीने की गली अच्छी लगी।।

प्रबुद्ध पाठक! जरा सोचिये, इस्लाम की मजहबी शिक्षा में ऐसा क्या है, जो मात्र दो पीढ़ी पूर्व के हिन्दुओं के वंशजों (इकवाल, जिन्ना, शेख अब्दुल्ला आदि) को अपने इतिहास, संस्कृति व सभ्यता से न केवल घृणा करना सिखाता है, अपितु पूर्वजों के मत को मानने वाले लोगों के साथ स्वदेश में रहना भी उन्हें घृणित लगने लगता है। फिर जिनके पूर्वज आये ही विदेश से थे, उनकी इस देश के प्रति आस्था कैसे हो सकती थी? सर सैयद अहमद खाँ के अलगाववादी विचारों से परिचित होते हुए भी दिनकर जी ने नेहरू जी का समर्थन कर दिया कि सर सैयद में साम्प्रदायिकता (संकीर्णता) थी या नहीं, यह सन्दिग्ध विषय है। (पृ० ५८३)

इतिहास के पाठक जानते हैं कि सैयद अहमद खाँ २०-२१ वर्ष की अवस्था में अंग्रेजों के नौकर हो गये थे और १८५७ के संग्राम के बाद उन्होंने मुसलमानों को अंग्रेजभक्त सिद्ध करते हुए पुस्तक लिखी थी, जिसमें स्वतंत्रता सेनानियों को गुण्डे, डाकू व लुटेरे लिखा है। इसके बाद उन्होंने मुसलमानों को अंग्रेजभक्त बनाने व हिन्दुओं से अलग रखने में सारी ताकत लगा दी। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि व एक जागीर इनाम में दी थी। यद्यपि कांग्रेस का संस्थापक एक अंग्रेज था, तथापि उन्होंने कांग्रेस को हिन्दू संस्था बताकर मुसलमानों को उससे दूर रहने के लिए कहा। 'मुसलमानों के लिए अलग देश का विचार सबसे पहले सर सैयद अहमद खाँ ने ही

दिया था। लाहौर में भाषण देते हुए कहा था कि मुसलमान हिन्दुओं के गुलाम बनकर नहीं रहेंगे। उनके लिए अलग वतन चाहिए।

स्वयं सर सैयद अहमद खाँ की क्षुद्रता के प्रमाण लिखकर भी दिनकर जी ने लिख दिया- "वैसे, वे उन्नीसवीं सदी के उन भारतीय महापुरुषों में थे जो इन (साम्प्रदायिक) क्षुद्र भावनाओं से बहुत ऊँचे थे.." (पृ० ५८३)। लगता है कि दिनकर जी ने अपनी अन्तरात्मा को मारकर ये पंक्तियाँ लिखी हैं, क्योंकि सर सैयद का अलगाववादी या देशद्रोही चेहरा दिखाते हुए दिनकर जी ने अगले ही पृष्ठ पर लिखा है-

"सर सैयद गवर्नर-जनरल की काउंसिल के भी सदस्य हुए थे। दुर्भाग्यवश, राजभक्ति के जोश में आकर वहाँ भी उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाने की सलाह दी। यह स्पष्ट ही, साम्प्रदायिक कृत्य था, जिसके जहर का अन्दाजा सर सैयद को भी नहीं रहा होगा। और तो और, सन् १८५८ ई० में सर सैयद ने, अंगरेजों को इसलिए भी फटकारा था कि सेना में अंगरेजों ने हिन्दू और मुस्लिम रेजिमेंट अलग-अलग क्यों नहीं रखे कि हिन्दू बागियों को मुस्लिम और मुस्लिम बागियों को हिन्दू सेना तबाह कर देती। क्यों उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक ही रेजिमेंट में रखकर उन्हें दोस्त बनने का मौका दिया?"

ऐसी विचारधारा वाले शिक्षाशास्त्री की अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से यदि हैदराबाद के निजाम उस्मान अली और कश्मीर के शेख अब्दुल्ला जैसे राष्ट्रद्रोही पैदा हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर दुःख तो इस बात का है, फिर भी दिनकर जी ने सर खाँ को महापुरुषों की श्रेणी में रख दिया। दिनकर जी भूल गये कि सामान्य जनता तो महापुरुषों के पग-चिह्नों पर चलती है।

हमने विद्वानों से सुना है कि मानव शरीर की सुन्दरता बढ़ाने वाले नाखून, दाँत व बाल जब अपना स्थान छोड़ देते हैं, तो इन्हें फेंक दिया जाता है। इसी

प्रकार जो महापुरुष अपने सिद्धान्त को छोड़ देता है, वह सम्मान का पात्र नहीं रहता। भारत के प्रसिद्ध कवि अल्लामा इकबाल ऐसे ही व्यक्तित्व के थे। प्रारम्भ में उन्होंने भारत-प्रेम की कविताएँ लिखीं और देश की जनता ने उन्हें खूब सम्मान दिया, पर जनता के प्यार पर अंग्रेज सरकार का 'मान' भारी पड़ गया और सर सैयद अहमद खाँ की तरह अंग्रेजों से 'सर' की उपाधि प्राप्त कर (१९२२ ई०) सर इकबाल अलगाववादी हो गये। मजहबी चश्मा पहनकर फिर वे सर सैयद अहमद खाँ के 'मुसलमानों के लिए अलग देश' के विचार को साकार रूप देने में जुट गये। इसके लिए उन्होंने तलवार उठाकर जेहाद करने का भी समर्थन किया। मुस्लिम लीग के सभापति के रूप में १९३० ई० में उन्होंने पाकिस्तान शब्द का प्रयोग किया और अपनी मृत्यु (१९३८ ई०) से पूर्व मुसलमानों के लिए पाकिस्तान और उसे प्राप्त करने का दर्शन भी मुहम्मद अली जिन्ना को सौंप गये। उनके विचारों से प्रेरणा पाकर ही १९३७ के प्रान्तीय विधानसभाओं के चुनावों की हार से निराश हुए जिन्ना पुनः देश तोड़ने में सक्रिय हो गये और अंग्रेजों की सहायता से सफल भी हो गये।

क्या ऐसी अवस्था में कवि इकबाल सच्चे भारतीय (हिन्दू-मुस्लिम) के लिए आदरणीय हो सकते हैं? फिर भी दिनकर जी ने सर इकबाल की विचारधारा पर लगभग २० पृष्ठ लिख दिये। जबकि उन्होंने स्वीकार किया है- "चूँकि मुसलमान सारे विश्व में फैले हुए थे। इसलिए उन्होंने (इकबाल ने) एक ऐसी राष्ट्रीयता की कल्पना कर ली, जिसका आधार देश नहीं, धर्म था। और इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने इस्लाम को सर्वश्रेष्ठ धर्म, मुसलमान को सर्वश्रेष्ठ मानव और इस्लामी बन्धुत्व को राष्ट्रीयता का श्रेष्ठतम रूप मान लिया। इकबाल के पूर्व, सर सैयद, हाली, शिवली और अमीर अली ने इस्लाम के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, उसका निचोड़ इकबाल की कविता में प्रविष्ट हो गया... इकबाल के इस मत परिवर्तन से सभी प्रगतिशील लोग कराह

उठे।" (पृ० ५६६-६७)

भले ही दिनकर जी ने नेहरू का समर्थन करते हुए भारतीय संस्कृति को मिश्रित (सामासिक) संस्कृति लिखा है पर उनकी आत्मा मानती है कि मुस्लिम विचारधारा (कुछ व्यक्तिगत अपवादों को छोड़कर) अधुनशील ही रही है। श्रीमती एनी बेसेंट और डॉ० अम्बेडकर ने भी माना है कि मुसलमानों का मुख्य लगाव मुस्लिम देशों से है, मातृभूमि से नहीं। और 'पान-इस्लामी राष्ट्रीयता' में दिनकर जी ने लिखा है- "(मुसलमान और कुछ होने से पहले मुसलमान हैं) यही भाव मुसलमानों को उन देशों में अप्रसन्न रखता है, जिन देशों में मुसलमानों का राज्य नहीं है अथवा जिन देशों में वे अल्पसंख्यक हैं। देशों की सीमाओं के भीतर मुसलमानों का केवल शरीर रहता है, मन से वे समस्त विश्व के मुसलमानों के साथ अपनी एकात्मता का अनुभव करते हैं। इसीलिए भारत तथा कुछ अन्य देशों में बहुमत उनके प्रति क्षुब्ध रहा है। ... एक प्रकार का द्वन्द्व शुरू हो जाता है, जिसका इलाज निकालने में मुसलमान आज तक असमर्थ रहे हैं।" (पृ० ६०६)

फिर भी दिनकर जी ने स्वामी श्रद्धानन्द व महात्मा हंसराज जैसे शिक्षाशास्त्री और सुभाष, सावरकर जैसे देशभक्तों की प्रेरक विचारधारा को अनदेखा कर दिया व गाँधी की अहिंसा और राम नाम की तर्कहीन परिभाषा पर ही सब कुछ समाप्त कर दिया। वे तो दिनकर (सूर्य) थे, मैं तो नन्हा सा जिज्ञासु हूँ। वैदिक विद्वानों के आशीर्वाद से यह संक्षिप्त सी समीक्षा लिखने का प्रयास किया है (बहुत से प्रसंगों की समीक्षा 'भारत की खोज' की समीक्षा में की जा चुकी है) ताकि 'संस्कृति के चार अध्याय' को ही प्रमाण मानकर कोई पाठक या लेखक मिथ्या धारणा का शिकार न हो (ऐसी ही पुस्तक 'ज्ञान पयोधि स्वामी विवेकानन्द' के लेखक को डॉ. भवानीलाल भारतीय जी ने 'शान्ति धर्मी' जनवरी २००६ में दर्पण दिखाया था)। मनु महाराज को दलित विरोधी कहकर गाली देना और 'मनुस्मृति' को जलाने का फैशन मिथ्या शेष पृष्ठ १७ पर

आर्य समाज, टोरन्टो, कनाडा से श्री ज्ञानेश्वरार्य का पत्र

समादरणीय श्रीयुत्

सादर नमस्ते।

ईश्वरकृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु।

स्वामी सत्यपति जी मेरे गुरु हैं, उनसे मैंने योग, दर्शन और उपनिषद् पढ़े, जीवन को श्रेयमार्ग पर चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया, उनके सान्निध्य में सैकड़ों ध्यान शिविर लगाये, अध्यापन किया। पिछले १६ वर्षों से यूरोप, अफ्रीका, एशिया, अमेरिका आदि देशों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ प्रतिवर्ष जा रहा हूँ। इस वर्ष USA में अधिक समय लगाया। इस देश में भारत से आये, हजारों की संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त, धार्मिक आध्यात्मिक संस्कारों से युक्त युवा, विश्व की प्रसिद्ध कम्पनियों में महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत हैं। इस बार USA की सिली कोन वेली (San Jose) देखने का अवसर मिला, जिसमें गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, एपल आदि अनेक विशिष्ट संस्थान स्थित हैं, जो समस्त विश्व को अपने में समेटे हुये हैं। इन सबको देखने के बाद दुःखमिश्रित सुख मिला। काश इन प्रबुद्ध युवकों को भारत में ही ऐसा कार्य करने का अवसर मिला होता!!!

आज अमेरिका आदि पाश्चात्य देश अपनी सम्पत्ति, ऐश्वर्य, शक्ति, बुद्धि के कारण सम्पूर्ण विश्व पर अपना वर्चस्व बनाये हुये हैं, इसका कारण इन लोगों की दूरदर्शिता, राष्ट्रभक्ति, परस्पर संगठन, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, सहयोग है। उत्साह, साहस, पराक्रम, अनुशासन, आगे बढ़ने की उत्कट इच्छा, कार्यकुशलता आदि गुण हैं। प्राकृतिक संसाधनों की खोज करके उनका समुचित, व्यवस्थित रूप में सदुपयोग करना इनकी विशेषता है। भूमि, धन, सम्पत्ति, सोना, चाँदी, हीरे-मोती आदि ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले पदार्थों की खोज में अपने प्रदेशों से निकल पड़े। नितान्त वीहड़ जंगलों, पर्वतों, पठारों, मरुस्थलों, नदियों, समुद्रों में मासों/वर्षों तक सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, आंधी,

तूफान आदि अत्यन्त प्रतिकूलताओं को सहन करते हुवे, यहाँ तक कि मृत्यु से प्रतिपल जूझते हुवे, नये-नये प्रदेशों को ढूँढा, वहाँ के लोगों से युद्ध किया, उनको भगाया, मारा और अपना साम्राज्य स्थापित किया। वहाँ के अधिकारी/स्वामी बन बैठे।

संसार में एक नियम प्रसिद्ध है, जिसे “योग्यतम की जीत” नाम से जाना जाता है। इसका भावार्थ यह है कि जो सशक्त, समर्थ, साहसी, साधनसम्पन्न है, वह विजयी होता है और जो निर्बल, निर्बुद्धि, भीरु, कायर, रोगी, असंगठित है, वह पराजित हो जाता है। महाभारत के युद्ध के हजारों वर्षों बाद तक यह आर्यावर्त “सोने की चिड़िया”, “पारस मणि”, “विश्वगुरु” कहलाने वाला देश अंधविश्वास, पाखण्ड, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, विगठन, निर्बलता, जड़पूजा आदि भयंकर रोगों से ग्रस्त हो गया। परिणामस्वरूप विदेशी आक्रान्ताओं ने इस पर लगातार आक्रमण किये। इतिहास बताता है कि कुछ तो आक्रान्ता इतने क्रूर, आसुरी, पैशाचिकवृत्ति वाले थे, जिनके अत्याचारों को पढ़, सुनकर हृदय काँप जाता है, शरीर रोमांचित हो जाता है। मन में आक्रोश, विद्वेष, प्रतिशोध की भावना बन जाती है। उनमें से गजनी, चंगेज, खिलजी, नादिर, तैमूर, कासीम, सिकंदर आदि के नाम प्रसिद्ध हैं, किन्तु आज इनके नाम तथा इतिहास को नितान्त हटा दिया गया है।

किसी भी राज्य में दीर्घकालीन, शान्ति, सुख, ऐश्वर्य मनुष्यों को अकर्मण्य, आलसी, प्रमादी, अहंकारी, स्वेच्छाचारी, कुव्यसनी बना देते हैं। इन्हीं न्यूनताओं, दोषों के कारण भारत पर सैकड़ों वर्षों तक शकों, हूणों, मुगलों, पठानों, तुर्कों आदि के आक्रमण होते रहे, सम्पत्ति लूट कर ले जाते रहे, बाद में ये लोग, यहीं रह कर राजा बन गये।

इन्हीं विदेशी आक्रान्ताओं की पराधीनता, अन्याय,

अत्याचार, अपमान, शोषण, घृणा, पक्षपातपूर्वक क्रूर व्यवहार के कारण भारतीयों की अस्मिता, स्वाभिमान, गौरव, शौर्य, उत्साह, साहस, पराक्रम आदि विशिष्ट गुण दब गये, नष्ट हो गये, विस्मृत हो गये जो आज तक परम्परा से चले आ रहे हैं यह सब गुलामी के प्रभाव और परिणामों से हुआ। इसी कारण आज सारे विश्व में भारत की अस्मिता, वर्चस्व, महत्ता, कीर्ति, प्रतिष्ठा सब समाप्त हो गये हैं। इतना होने पर भी हम सतर्क सावधान नहीं हो रहे हैं।

ये आसुरी शक्तियाँ आज सीरिया या अफगानिस्तान में ही नहीं हैं, बल्कि देश के प्रत्येक प्रान्त व नगर में भी छिपी बैठी हैं। यदि हम इनको नष्ट करने के लिए योजनाएँ नहीं बनायेंगे, संगठित होकर तन-मन-धन का त्याग नहीं करेंगे, सब प्रकार के साधनों का संग्रह करके प्राणों की बाजी लगाकर इन आतंकवादियों को नष्ट करने का दृढ़ संकल्प नहीं लेंगे, तो जो ७००-८०० वर्षों तक हमारे पूर्वजों की दुर्दशा हुई, वही सहन करने को तैयार हो जावें। यदि सूक्ष्मता से देखा जाये तो यह प्रतीत होगा कि हम वैदिक दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र हुवे ही नहीं हैं। स्वतंत्रता, संविधान, नीति, विधि-विधान, व्यवस्था, प्रबन्ध, शिक्षा, न्याय, दण्ड आदि अभी तक अपूर्ण हैं।

पृष्ठ १५ का शेष
धारणा के ही विपैले फल हैं, जिन्हें डॉ० अम्बेडकर के नाम पर स्वार्थी नारेबाज नेताओं द्वारा भी परोसा जा रहा है। विद्वान् जानते हैं कि डॉ० अम्बेडकर ने मूल मनुस्मृति न पढ़कर अंग्रेजों द्वारा किये गये अनुवाद पढ़े थे। फिर भी डॉ० साहब ने कई विषयों में मनु का समर्थन किया है, जिसे तथाकथित दलित हितैषी नेता प्रचारित ही नहीं करते। ऐसे लोगों की धूर्तता के कारण ही भोले हिन्दू समाज में महर्षि मनु घृणित हुए, तो डॉ० अम्बेडकर भी वर्ग विशेष के नेता (वकील) बनकर रह गये।

महाकवि रामधारी सिंह दिनकर जी की काव्य प्रतिभा को मैं सादर नमन करता हूँ। 'कुरुक्षेत्र' व 'रश्मिरथी'

इन-सब में परिवर्तन, परिशोधन, परिवर्धन अभी अपेक्षित है। विवाह का अधिकार, सन्तानोत्पत्ति की संख्या, मत देने तथा राज्याधिकारी बनने की पात्रता, कर्मकाण्डों का औचित्य, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा, हिंसा की परिभाषा, राष्ट्र भावना, शिष्टता, भद्रता, नैतिकता, सामाजिकता, नागरिकता का स्पष्टीकरण, इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण विषय हैं, जिन पर गंभीरता से चिन्तन करना अति आवश्यक है।

हे प्रभो ! वैदिक विश्वचक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना हेतु अब तो माताओं के गर्भों में दिव्यात्माओं को जन्म धारण कराओ, जो गुरुकुलों में जाकर शूरवीर, मेधावी, साहसी पराक्रमी, वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड विद्वान् बनकर, देश-विदेश में अज्ञान, अधकार में भटकते हुवे मानवों को वेदज्ञान का प्रकाश करें, जिससे सारा विश्व सुख शान्ति, समृद्धि प्रेम से परिपूर्ण हो जाये। हे देव! यह गुरुत्तम कार्य आपकी सहायता प्रेरणा के बिना असंभव है अतः हमें तो आप पर ही पूर्ण भरोसा है आप ही अपनी कृपा से यह कार्य सम्पन्न करायेंगे इसी भावना, श्रद्धा, विश्वास व आशा के साथ आपका

ज्ञानेश्वराय
□□

जैसी रचनाएँ उन्हें अमरता प्रदान करती रहेंगी। 'संस्कृति के चार अध्याय' में जो बातें मुझे वैदिक संस्कृति के प्रतिकूल व राष्ट्र के लिए हानिकारक लगीं, सद्भावपूर्ण ढंग से उनकी समीक्षा लिखी है। अपने आचार्यों से हमने सुना है कि केवल कुछ मतभेद होने के कारण ही किसी की महत्ता (महानता) को हम नकार नहीं सकते। अन्त में आचार्य श्री आनन्द प्रकाश जी (रंगारेड्डी, तेलंगाना) के शब्दों को स्मरण करते हुए प्रस्तुत विषय को समाप्त करते हैं-

“प्रत्येक व्यक्ति की अपने सामर्थ्य की सीमा होती है। जो जितना (अच्छा) कर दे, उतने के लिए वह सदैव धन्यवाद का पात्र होगा।”

इत्योम् शम्

ऋषि दयानन्द का बलिदान व महाप्रयाण

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो०-०६४१२६८५१२१)

ऋषि दयानन्द जी का जीवन गुणों व कार्यों की दृष्टि से जितना सर्वांगपूर्ण और शिक्षाप्रद है, उतनी ही उनकी मृत्यु भी आदर्श है। कार्तिक अमावस्या के दिन अजमेर नगर में उनका बलिदान व महाप्रयाण हुआ। स्वामी जी को जोधपुर प्रवास में विष दिया गया था। इससे पूर्व भी अनेकों बार उन्हें विष दिया गया। पूर्व के सभी अवसरों पर वह यौगिक एवं अन्य क्रियाओं द्वारा विष का प्रभाव समाप्त करने में सफल रहते थे। ऋषि दयानन्द जोधपुर वहाँ के राजा जसवन्त सिंह व उनके अनुज महाराज प्रताप के निमंत्रण पर गये थे और वहाँ राज्य के अतिथि थे। विष दिये जाने के बाद वहाँ उनका समुचित उपचार व चिकित्सा नहीं हुई। उनकी शारीरिक स्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो जाने पर उन्हें वहाँ से आबूरोड और उसके बाद आबूरोड से अजमेर लाया गया, जहाँ उनका दीपावली ३० अक्टूबर सन् १८८३ को सायं ६:०० बजे बलिदान हुआ। उनकी मृत्यु के दिन का वृत्तान्त हम उनके एक जीवनीकार एवं शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी के शब्दों में वर्णन कर रहे हैं।

स्वामी सत्यानन्द जी लिखते हैं कि कार्तिक कृष्ण १४ को महाराज के शरीर पर नाभि तक छाले पड़ गये थे, उनका जी घबराता था, गला बैठ गया था। श्वास-प्रश्वास के वेग से उनकी नस-नस हिल जाती थी। सारी देह में दाह-सी लगी हुई थी। परन्तु वे नेत्र मूंदकर ब्रह्मध्यान में वृत्ति चढ़ाये हुए थे। अंजान लोग उनकी इस ध्यानावस्था को मूर्छा मान लेते थे। जब शरीर अपने व्यापार से शिथिल हो जाय और बोलने आदि की शक्ति भी मन्द पड़ जाय, तो सभी सन्तजन मनोवृत्तियों को मूर्छित करके निमग्नावस्था में चले जाया करते हैं।

कार्तिक अमावस्या मंगलवार (३० अक्टूबर, सन् १८८३), दीपमाला के दिन, सवेरे बड़ा डॉक्टर न्यूटन महाशय आया। उसने उनके रोग-भोग की अवस्था देखकर आश्चर्य से कहा कि ये बड़े साहसिक और सहनशील हैं। इनकी नस-नस और रोम रोम में रोग का विपैला कीड़ा घुसकर कुलबुलाहट कर रहा है परन्तु ये प्रशान्तचित्त हैं। इनके तनपिंजर को महाव्याधि की ज्वाला-जलन जलाये चली जाती है, जिसे दूर से देखते ही कंपकंपी छूटने लगती है। पर ये हैं कि चुपचाप चारपाई पर पड़े हैं। हिलते-डुलते तक नहीं। इस सिंथिति में भी जीते रहना इन्हीं का काम है। भक्त लक्ष्मणदास ने उनसे कहा कि महाशय ये महापुरुष स्वामी दयानन्द जी हैं।

यह सुनकर डॉक्टर महाशय को अत्यधिक शोक हुआ। महाराज ने उस बड़े वैद्य के प्रश्नों का उत्तर संकेत मात्र से दिया। एक मुसलमान वैद्य पीरजी, बड़े प्रसिद्ध थे। वे भी उनको देखने आये। उन्होंने आते ही कह दिया- 'इनको किसी ने कुलकण्ठक विष देकर अपनी आत्मा को कालख लगाई है। इनकी देह पर सारे चिन्ह विष-प्रयोग-जन्य दिखाई देते हैं। पीर जी ने भी महाराज का सहन-सामर्थ्य देख दाँतों में उंगली दबाते हुए कहा, धैर्य का ऐसा धनी, धरणी-तल पर हमने दूसरा नहीं देखा।

इस प्रकार राजवैद्यों और भक्तजनों के आते-जाते दिन के ग्यारह बजने लगे। रोगी का सांस अधिक फूलने लगा। वे हाँफते तो बहुत थे परन्तु बोलने की शक्ति कुछ लौट आई थी। उनका कण्ठ खुल गया था। इससे प्रेमियों के मुखमण्डलों पर प्रसन्नता की रेखा खेलने लगी। परन्तु पीछे जाकर उन्हें पता चला कि वह तो दीपक-निर्वाण की अन्तिम प्रदीप्ति थी। सूर्यास्त का उजाला था।

महाराज ने उस समय शौच होने की इच्छा प्रकट

की। चार भक्तों ने उन्हें हाथों पर उठाकर शौच होने की चौकी पर बिठा दिया। निवृत्त होकर वे फिर भली भाँति शुद्ध हुए और आसन पर विराजमान हो गये।

उस समय स्वामीजी ने कहा कि आज इच्छानुकूल भोजन बनाइए। भक्तों ने समझा कि भगवान् आज अपेक्षाकृत कुछ स्वस्थ हैं, इसलिए अन्न ग्रहण करना चाहते हैं। ये थाल लगाकर श्री महाराज के सामने ले आये। स्वामीजी ने टुक देखकर कहा कि अच्छा, इसे ले जाइए। अन्त में प्रेमियों की प्रार्थना पर उन्होंने चनों के झोल का एक चमचा ले लिया फिर हाथ मुंह धोकर भक्तों के सहारे वे पलंग पर आ गये।

शरीर की वेदना बराबर ज्यों की त्यों बनी हुई थी। श्वास रोग का उपद्रव पूरे प्रकोप पर पहुँच चुका था। पर वे शिष्य-मण्डली से वार्तालाप करते और कहते थे कि एक मास के अनन्तर आज स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ है। बीच-बीच में जब वेदना का वेग कुछ तीव्र हो जाता, तो वे आँखें बन्दकर मौन हो जाते। उस समय उनकी वृत्ति स्थूल शरीर का सम्बन्ध छोड़ देती.... आत्माकारता को लाभ कर लेती।

इसी प्रकार पल-विपल वीतते सांझ के चार बजने को आये। भगवान् ने नाई को बुलाकर क्षौर करने को कहा। लोगों ने निवेदन किया कि भगवान् उस्तरा न फिराइए। छाले- फुंसियां कटकर लहू बहने लगेगा, परन्तु उन्होंने कहा कि इसकी कोई चिन्ता नहीं है। क्षौर कराकर उन्होंने नख उतरवाए। फिर गीले तौलिये से सिर को पोंछकर सिरहाने के सहारे पलंग पर बैठ गये।

उस समय श्री महाराज ने आत्मानन्द जी को प्रेम से आहूत किया। जब आत्मानन्दजी हाथ जोड़कर सामने आ खड़े हुए तो कहा- वत्स, मेरे पीछे बैठ जाओ। गुरुदेव का आदेश पाकर वे सिराहने की ओर, तकिये के पास प्रभु की पीठ थामकर विनय से बैठ गये।

महाराज ने अतीव वत्सलता से कहा- 'वत्स, आत्मानन्द, आप इस समय क्या चाहते हैं? महाराज के वचन सुनकर आत्मानन्द जी का हृदय भर आया। उनकी आँखों से एकाएक आँसुओं की लड़ी टूट पड़ी गद्गद्

गले से आत्मानन्द जी ने नम्रीभूत निवेदन किया कि यह, 'तुच्छ सेवक रात-दिन प्रार्थना करता है कि परमेश्वर अपनी अपार कृपा से श्रीचरणों को पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करें। हमें इससे बढ़कर त्रिभुवन भर में दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं है।'।

महाराज ने हाथ बढ़ाकर आत्मानन्दजी के मस्तक पर रखा और कहा- 'वत्स इस नाशवान् क्षणभंगुर शरीर को कितने दिन स्वस्थ रहना है। बेटा, अपने कर्तव्य कर्म को पालन करते हुए आनन्द से रहना। घबराना नहीं। संसार में संयोग और वियोग का होना स्वाभाविक है।'।

महाराज के इन वचनों को सुनकर आत्मानन्द जी सिसक-सिसक कर रोने लगे। गुरुवियोग-वेदना को अति समीप खड़ा देखकर उनका जी शोक-सागर के गहरे तल में डूब गया।

गोपालगिरी नाम के एक संन्यासी भी कुछ काल से श्रीचरण-शरण में वास करते थे। महाराज ने उनको आमन्त्रित करके कहा कि आपको कुछ चाहिए तो बता दीजिए। उन्होंने भी यही विनय की कि भगवान् हम लोग तो आपका कुशल-क्षेम ही चाहते हैं। हमें सांसारिक सुख की कोई भी वस्तु नहीं चाहिए। फिर महाराज ने दो सौ रुपये और दो दुशाले मंगाकर भीमसेन जी और आत्मानन्द जी को प्रदान किये। उन दोनों ने अश्रुधारा बहाते, भूमि पर सिर रखकर, वे वस्तुयें लौटा दीं। वैद्यवर भक्तराज श्रीलक्ष्मणदास जी को भी भगवान् ने कुछ द्रव्य देना चाहा, परन्तु उन्होंने द्रवीभूत हृदय से कर जोड़कर लेने से इनकार कर दिया।

इस प्रकार अपने शिष्यों से गुरु महाराज को विदा होते देखकर आर्यजनों के चित्त की चंचलता और चिन्ता की प्रचण्डता चरम सीमा तक पहुँच गई। वे बड़ी व्याकुलता से सामने आ खड़े हुए। उस समय, श्री स्वामी जी, अपने दोनों नेत्रों की ज्योति सब बन्धुओं के मुखमण्डलों पर डालकर, एक नीरव पर अनिर्वचनीय स्नेह-संताप सहित, उनसे अन्तिम विदाई लेने लगे। उनके प्रेमपूर्ण नेत्र, अपने पवित्र प्रेम के सुपात्रों को धैर्य देते

और ढाढस बंधाते प्रतीत होते थे। महाराज प्रसन्नचित्त थे। उनके मुख पर घबराहट का कोई भी चिन्ह परिलक्षित नहीं होता था।

परन्तु भक्तजनों की आशायें क्षण-क्षण में निराशा-निशा में लीन हो रही थीं। उनके उत्साह की कोमल कलियों के सुकोमल अंग पल-पल में भंग हुए चले जाते थे। वे गुरुदेव की दैवीदेह के देव-दुर्लभ दर्शन पा तो रहे थे, परन्तु उनकी आँखों के आगे रह-रह कर आँसुओं की बदलियाँ आ जाती थीं। रुलाई का कुहरा छा जाता था। सर्वत्र निविड़ तमोराशि का राज्य दिखाई देने लगता था। वे जी (अपने मन व चित्त) को कड़ा किये कलेजा पकड़ कर खड़े तो थे, परन्तु खोखले पेड़ और भुने हुए दाने की भाँति, मानो सत्वरहित थे।

ऐसी दशा ही में सायंकाल के पाँच बजने लगे। उस समय एक भक्त ने पूछा कि भगवान्, आपकी प्रकृति कैसी है? श्रीमहाराज ने उत्तर दिया कि अच्छी है, प्रकाश और अन्धकार का भाव है। इन्हीं बातों में जब साढ़े पाँच बजे तो महाराज ने सब द्वार खुलवा दिये। भक्तों को अपनी पीठ के पीछे खड़े होने का आदेश किया। फिर पूछा आज पक्ष, तिथि और वार कौन सा है। पण्ड्या मोहनलाल ने शिरोनरत होकर निवेदन किया कि प्रभो, कार्तिक कृष्ण पक्ष का पर्यवसान और शुक्ल का प्रारम्भ है। अमावस्या और मंगलवार है।

तत्पश्चात् महाराज ने अपनी दिव्यदृष्टि को उस कोठी के चहुँ ओर घुमाया और फिर गम्भीर ध्वनि से वेदपाठ करना आरम्भ कर दिया। उस समय उनके गले में, उनके स्वर में, उनके उच्चारण में, उनकी ध्वनि में, उनके शब्दों में किञ्चिन्मात्र भी निर्बलता प्रतीत नहीं होती थी।

भगवान् के होनहार भक्त, पण्डित श्री गुरुदत्त जी उस कमरे के एक कोने में भित्ति के साथ लगे हुए, भगवान् की भौतिक दशा के अन्त का अवलोकन कर रहे थे। टकटकी लगाये निर्निमेष नेत्रों से उनकी ओर देख रहे थे।

पण्डित महाशय उस धर्मावतार के दर्शन करने

पहले-पहल ही आये थे। उनके अन्तःकरण में अभी आत्मतत्त्व का अंकुर पूर्ण-रूप से नहीं निकल पाया था। परन्तु श्रीमहाराज की अन्तिम दशा को देखकर वे अपार आश्चर्य से चकित हो गये। वे चौकसाई विचार से देख रहे थे कि मरणासन्न महात्मा के तन पर अगणित छाले फूट निकले हैं, उनको विषम वेदना व्यथित किये जाती है। उनकी देह को दावानल सदृश दाह-ज्वाला एक प्रकार दग्ध कर रही है। प्राणान्तकारी पीड़ा उनके सम्मुख उपस्थित है। परन्तु महात्मा शान्त बैठे हैं। दुःखक्लेश का नाम निर्देश तक नहीं करते। उलटे गम्भीर गर्जना से वेदमन्त्र गा रहे हैं। उनका मुख प्रसन्न है। आँखें कमल सदृश खिल रही हैं। व्याधि मानो उनके लिए त्रिलोकी में त्रयकाल, उत्पन्न ही नहीं हुई। यह सहनशीलता शरीर की सर्वथा नहीं है, अवश्यमेव यह इनका आत्मिक बल है।

यह पहला पल था कि महर्षि की मृत्यु की अवस्था देखकर श्रीगुरुदत्त जैसे धुरन्धर नास्तिक के हृदय की उपजाऊ भूमि में आत्मिक जीवन की जड़ लग गई। इन भावों की विद्युत रेखा चमकते ही वे सहसा चौंक पड़े। इस आत्मयोग के प्रत्यक्ष प्रमाण को पाकर पण्डित महाशय का चित्तस्फटिक, आस्तिक भाव की प्रभा से चमचमा उठा। मानों एक ओर से निकलती हुई वह प्रभा उनकी देह के दीप में प्रवेश कर गई।

गुरुदत्त अपनी गुप्त रीतियों से आत्मदाता गुरुदेव को फिर अतिशय श्रद्धा से देखने लगे। भगवान् वेदगान के अनन्तर, परमप्रीति से पुलकित अंग होकर, संस्कृत शब्दों में परमात्मदेव की प्रार्थना करने लगे। फिर आर्यभाषा में ईश्वर गुण गाते भक्तों की परम गति भगवती गायत्री को जपने लगे। उस महामन्त्र के पुण्यपाठ को करते-करते मौन हो गये और चिरकाल तक सुवर्णमयी मूर्ति की भाँति निश्चल रूप से समाधिस्थ बैठे रहे। उस समय उनके स्वर्गीय मुखमण्डल के चारों ओर सुप्रसन्नता प्रभात की झिलमिलाहट पूर्ण रूप से झिलमिल कर रही थी।

समाधि की उच्चतम भूमि से उतर कर, भगवान् ने

दोनों नेत्रों के पलक-कपाट खोलकर, दिव्य ज्योति का विस्तार करते हुए कहा- “हे दयामय, हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है। सचमुच, तेरी यही इच्छा है। परमात्मदेव तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! मेरे परमेश्वर, तैने अच्छी लीला की।”

इन शब्दों का उच्चारण करते ही, ब्रह्मऋषि ने आत्मिक प्राण को ब्रह्माण्ड द्वारा परमधाम को जाने के लिये स्वर्ग-सोपान पर आरुढ़ किया और तत्पश्चात् पवनरूप प्राण को कुछ पल भीतर रोक कर प्रणवनाद के साथ बाहर निकाल दिया। उसे सूत्रात्मा वायु में लीन कर दिया।

प्रभु के स्थूल प्राण के निकलने के साथ ही उपस्थित सेवकों की अश्रुधारायें बहने लगीं। अनाथ बालकों की भाँति, भक्तजनो ने रो-रोकर कमरे की भूमि को, भिगो दिया। उनके दुःख का, उनके क्लेश का, उनकी निराशा का, उनके शोक का, कोई पारावार न रहा। सबके हृदय इस दारुण दुःख से विदीर्ण हो गये। वे बहुतेरा थामते पर उनका कलेजा बार-बार मुँह को आता था। वे धैर्य धारण करने की चेष्टा भी करते पर चित्त चकनाचूर ही हुए चला जाता था। फूट-फूटकर रोते उनकी आँखें फूल गईं। धिन्धियां बंध गईं। व्याकुलता वेग ने उनको शोक के अति गहरे सागर में डुबो दिया।

आर्त भारत के भाग्य का भानु, भगवान् दयानन्द, कार्तिक अमावस्या सम्बत् १९४० विक्रमी, मंगलवार को सायं के छः बजे एकाएक, काल कराल रूप अस्तांचल की ओट में हो गया। उस समय सूर्यदेव भी अस्त हो गये थे। तमोमयी महा तमिस्रा रजनी ज्यों-ज्यों घोरतररूप धारण करती जाती थी, त्यों-त्यों अजमेर के तार-घर से दौड़ते हुए तार आर्यसंसार में निराशा की, अति शोक की और असह्य विपत्ति वज्रपात की घोरतम तमोराशि की निपट निशा का विस्तार कर रहे थे।

महाराज के निर्वाण का अचानक समाचार पाकर आर्यों के चित्त चौंक पड़े, चंचल हो उठे, उनके सिर पर दुःखरूप पर्वत-शिखर का सहसा विनिपात हो गया। उस समय आर्यजनों की आँखें गंगा-यमुना की भाँति बड़े वेग

से बह रही थीं। उनके हृदय अस्त-व्यस्तता में व्याकुल हो रहे थे। मन गहरे खेद की खाई में गिरकर खिन्नावस्था में खण्ड-खण्ड हुए जाते थे। उनकी आत्मायें इतनी अधीर हो गई थीं कि उनको एक-एक पल द्रौपदी के चीर के समान दिखाई देता था और वह रात्रि काल-निशा सदृश जान पड़ती थी।

जिस प्रकार श्री राम के वियोग से भरत जी व्याकुल हो उठे थे और श्री कृष्ण के निर्वाण पर ऊधव जी तथा पाण्डवों ने करुण-क्रन्दन किया था, उसी प्रकार भगवान् दयानन्द के स्वर्ग सिंधारने पर आर्यसमाजियों में अनवरत आर्तनाद होने लगा। उनके मध्यान्ह के सूर्य की प्रखर किरणों पर अकस्मात् काल-कालिमा छा गई। शरत्पूर्णिमा के शुभ्र ज्योत्सना-युक्त चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ गई। उनकी उन्नति और उदय के बाल-रवि को राहु ने सहसा ग्रस लिया। हरित, भरित, पुष्पित और फलित आर्यसमाज वाटिका पर परुष-पाषाण राशि को भी तुषार रूप में परिणत करने वाला, भीषण तुषारपात हो गया। प्रसन्नता पर खिन्नता की झलक आ गई। चारु प्रेम-प्रतिमा अकाल ही में सामने से उठा ली गई। उनकी सुविमल, सुशीतल, सुवासित, सुकोमल चित्त-कलियों को काल की लू के झकोले ने जहाँ-तहाँ से झुलस दिया। वे गुरुवियोग व्यथा से विह्वल हो, बिलख-बिलख कर रोदन करते थे।

आंगामी दिन के समाचारपत्रों ने शोकसूचक काली रेखा देकर अपने स्तम्भों के स्तम्भ इस शोक समाचार पर लिखे, जिससे पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण पर्यन्त भारत भर में भगवान् के असामयिक स्वर्गारोहण का शोक छा गया। नगर-नगर में लोगों ने सभायें लगाकर इस अति भारी क्षति और धर्महानि पर आंसू बहाये। इस सार्वभौम शोक में, अमेरिका और यूरोप के देश भी सम्मिलित हुए।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को, प्रातःकाल भक्तजन भगवान् की जीवनज्योति विहीन, निर्जीव देह-दीवट को उठाकर स्नान कराने लगे। वे चाहते थे कि महाराज के शरीर पर केवल सुशीतल जल ही पड़े, परन्तु बलात्कार

उनके आंसू बराबर, टपटप करके टपक पड़ते थे। स्नान कराने के उपरान्त महाराज की देह को चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं से सुवासित किया गया। फिर उसे बहुमूल्य वस्त्रों में वेष्टित करके, पलंग पर प्राण-त्याग आसन में स्थापित किया गया। उस समय सैकड़ों मनुष्य उनके अन्तिम दर्शनों को दौड़े-दौड़े आकर, अपने नेत्रों की सहस्र धाराओं से उस कोठरी की भूमि को भिगोते थे। भक्तजन विमान बनाने लगे तो पण्ड्या मोहनलाल जी ने भ्रातृमण्डल के सामने निवेदन किया- “श्रीमन्महाराणा श्री सज्जनसिंह जी ने मुझे चलते समय आदेश दिया था कि यदि हम लोगों के दुर्भाग्य से महाराज का शरीर छूट जाए, तो किसी प्रकार तीन-चार दिन पर्यन्त उसका दाह-कर्म न किया जाय, जिससे मैं और उनके दूसरे शिष्ट राजे-महाराजे उनके अन्तिम दर्शन पा सकें, उनके दाह-कर्म में सम्मिलित हो सकें।” परन्तु प्रभु के उपस्थित प्रेमियों ने दाहकर्म उसी दिन कर देना ही उचित समझा। शिविका पुष्पों, कदली स्तम्भों और कोमल पत्तों से सुसज्जित की गई, दिन के दस बजे महाराज की अरथी उठाई गई। उस समय सैकड़ों सज्जन नंगे पांव उसके पीछे चलते थे। राय भागराम भी नंगे पांव साथ थे। महाराज के, शिविका में पड़े शव को पंजाबी सैनिक अपने बलिष्ठ कन्धों पर उठाये वहन कर रहे थे। रामानन्द जी और गोपाल गिरी जी आदि आगे-आगे वेदपाठ करते चलते थे। अजमेर नगर के आगरा द्वार से होते हुए बाजारों और चौकों का उल्लंघन करते नगर से बाहर दक्षिण भाग में शिविका पहुँचाई गई।

वेदी बनने में कुछ देर जानकर पण्डित भागराम जी ने आर्यों के डौंवाडोल मनों को धैर्य बंधाते हुए स्वर्गीय स्वामी जी के गुण-कीर्तन किये। उनके उपकार बताये और स्वामी जी के उद्देश्यों की परिपूर्ति के लिए स्वामी भक्तों को प्रोत्साहन दिया। यद्यपि पण्डित महाशय का कण्ठ बीच-बीच में वाष्प से बार-बार रुक जाता था, फिर भी उन्होंने यथा-तथा करके अपना हार्द प्रकाशित कर ही दिया।

तत्पश्चात् राव बहादुर पण्डित सुन्दरलाल जी कलेजे

को कड़ा करके कथन करने लगे। परन्तु उनके दोनों नेत्रों से बहते हुए अश्रुओं ने उनके वक्ष-स्थल को गीला कर दिया, उनका गला इतना रुक गया कि वे आगे कुछ भी न बोल सके।

वेदी बन जाने पर भक्त लोगों ने दो मन चन्दन और दस मन पीपल की समिधाओं से चिता चयन की। अपने टूक-टूक होते हृदयों को थाम कर उन्होंने गुरुदेव के शव को उस अन्तिम शय्या पर शायी कर दिया। रामानन्द और आत्मानन्दजी ने यथाविधि अग्न्याधान किया। अग्नि स्पर्श होते ही घृतसिंचित चिता, ज्वाला-माला से आवृत हो गई। उस दाह-कुण्ड में चार मन घी, पाँच सेर कपूर, एक सेर केसर और दो तोले कस्तूरी डाली गई। चरु और घृत की पुष्कल आहुतियों से हुत श्री महाराज का शव प्रेमियों के नीर भरे नेत्रों से देखते ही देखते अपने कारणों में लय हो गया। महाराज की आत्मा तो जागतिक ज्योति में पहिले ही लीन हो चुकी थी। सेवकों ने उनके शरीर को भी ज्योतिः शय्या पर आरूढ़ करके उसके तात्त्विकरूप में पहुँचा दिया।

गुरु महाराज की दुर्लभ देह का कर्म करने के अनन्तर, अति शोकातुर आर्यजन नगर को लौट आये। उस दिन वे अपने को निःसार और निःसत्त्व समझते थे, प्रत्येक कार्य में अनमने से हो रहे थे। अपने अति प्यारों को भी देखकर उनको प्रसन्नता नहीं होती थी। उनको अपने देह के दीवट पर धरा हुआ मन का दीवा प्रसन्नता की ज्योति से सर्वथा शून्य जान पड़ता था।

इस प्रकार टंकारा व मथुरा से उदय हुआ ऋषि दयानन्द जी का जीवन-सूर्य देश विदेश वा भूमण्डल में ईश्वरीय ज्ञान वेद की सत्य विद्याओं का प्रकाश सहित मानव मात्र के सर्वाधिक पूर्ण हित की आभा बिखेर कर अजमेर में दीपावली के दिन अस्त हो गया। हम ऋषि को कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं। यदि हम अपने जीवन में ऋषि की बताई शिक्षाओं व वेदमार्ग का कुछ भी अनुकरण व अनुसरण कर सकें, तो हमारा जीवन धन्य होगा। इसी के साथ लेखनी को विराम देते हैं।

□□

बन जाओ गौभक्त, अमर जग में हो जाओ

(प० नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन जनपद- पलवल, हरियाणा)

नरेन्द्र मोदी जी सुनो! आप खोलकर कान।
देश धर्म का कीजिए, श्रीमान् जी ध्यान॥
श्रीमान् जी ध्यान करो, शुभ कर्म करो तुम।
बन श्री राम समान, विश्व की पीर हरो तुम॥
भारत के प्रधानमंत्री, हो तुम नेता।
श्री कृष्ण से बनो, बहादुर वीर विजेता॥

गौ माता है मात सम, कहते वेद-पुराण।
समझो तुम अच्छी तरह, यदि चाहो कल्याण॥
यदि चाहो कल्याण, गऊ की महिमा गाओ।
बन जाओ गऊभक्त, अमर जग में हो जाओ॥
गौमाता का भक्त, जगत में सुख पाता है।
पाता है सम्मान, जहाँ भी वह जाता है॥

दलित-सवर्ण की मत करो, श्रीमान जी बात।
वर्गवाद से मच रहा, भारत में उत्पात॥
भारत में उत्पात, कराते देशद्रोही।
गए प्रभु को भूल, दुराचारी निर्मोही॥
वोट की खातिर धूर्त, कराते हैं नित झगड़े।
माल मुफ्त के खाय, गए बन पापी तगड़े॥

भारत में जो दुष्ट जन, करते अत्याचार।
उनको दो पूरी सजा, करो न उन पर प्यार॥
करो न उन पर प्यार, सुधर जाएंगे पापी।
आएगा न नजर, यहाँ कोई संतापी॥
बनो शिवा प्रताप वीर बन्दा बन जाओ।
बनकर वीर सुभाष, जगत में धूम मचाओ॥

घातक है, सबसे अधिक, छुआ-छूत का रोग।
नर-नारी इस रोग का, भोग रहे हैं भोग॥
भोग रहे हैं भोग, बड़ा नुकसान उठाया।
इसी रोग ने भारत था परतंत्र कराया॥
अगर मिटेगी नहीं, फूट की यह बीमारी।
सदा रहेंगे दुःखी भारती सब नर-नारी॥

जगतगुरु दयानंद की, शिक्षा लो अब मान।
नेता जी है विश्व में, सुनो, कर्म-प्रधान॥
सुनो, कर्म प्रधान, वेद यह दर्शाते हैं।
जो करते शुभ कर्म, सुफल सज्जन पाते हैं॥
वेद, शास्त्र, उपनिषद् पढ़ो, विद्वान् बनो तुम।
'नन्दलाल' कह, आर्यावर्त की शान बनो तुम॥

वेदों में कोई लौकिक इतिहास नहीं

(खुशहाल चन्द आर्य, 180, महात्मा गान्धी रोड, दो तल्ला, कोलकाता)

वेदों में अनेक पदों से यह भ्रम होता है कि उनमें ऐतिहासिक स्त्री-पुरुषों, ऋषि-मुनियों, नगरों, नदियों, पर्वतों के नाम हैं। जिन्हें देखकर कुछ लोग यह कह देते हैं कि वेदों में लौकिक इतिहास है। पाश्चात्य संस्कृतज्ञ ही नहीं वेदों को स्वतः प्रमाण मानने वाले भारतीय वेद भाष्यकार सायणाचार्य आदि भी वेदों में लौकिक इतिहास को स्वीकार कर लेते हैं। ऐसा वेद के शब्दों को रूढ़ि मान बैठने से होता है। जब कि वास्तव में वे सभी आचार्यों के मत में यौगिक हैं। कालान्तर में उनके अर्थ विशेष में सीमित हो जाने पर वे रूढ़ होने लगे। वेदों में अनित्य इतिहास अर्थात् किसी व्यक्ति या जाति विशेष का उल्लेख नहीं है। ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव मानव उत्पत्ति के साथ ही होता है, अतः उसमें मानव इतिहास नहीं हो सकता है, क्योंकि इसके पूर्व मानवोत्पत्ति नहीं होने से इतिहास सृजित ही नहीं हुआ था। सृष्टि के आदि में जब ज्ञान का एकमात्र आधार वेद ही था और मनुष्यों के व्यवहार की एकमात्र भाषा वैदिकभाषा थी, तब मनुष्यों द्वारा रक्खे गये पदार्थों के नाम वैदिक नामों से भिन्न कैसे हो सकते थे।

इस विषय पर मनु महाराज लिखते हैं कि :-
सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादो पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥
(मनु० २/२६)

सृष्टि के आदि में ज्ञान देते समय परमेश्वर ने सब पदार्थों के नाम, कर्म आदि बता दिये। उन्हीं नामों का लोग प्रयोग करने लगे। यौगिक प्रक्रियानुसार वैदिक शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार वेद से लोक में नाम आये, लोक से वेद में नहीं गये। वेद का इन ऐतिहासिक व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वेद में लौकिक इतिहास मानने पर वेद को अनित्य मानना पड़ेगा, इससे ईश्वर में भी पक्षपात की सिद्धि होगी। यौगिक प्रक्रिया अनुसार अर्थ होने पर वेद का कोई भी शब्द व्यक्ति या स्थान विशेष का वाचक नहीं

रहता। जहाँ ऐसा होता है, वस्तुतः वहाँ प्रायः प्राकृतिक जगत् के कारण तथा कार्यरूप तत्त्वों का औपचारिक व अलंकारिक वर्णन होता है। इस विषय में मीमांसा भाष्यकार शबर स्वामी लिखते हैं- “यह इतिहास जैसा प्रतीत होता है (वास्तव में है नहीं) यदि इतिहास माना जाये तो वेद को सादि अथवा अनित्य मानना पड़ेगा। परन्तु ऐसा नहीं है।”

वेदों में लौकिक इतिहास लेशमात्र भी नहीं है :- इस तथ्य को स्थापित करने का श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को जाता है। वेद में अर्जुन, द्रौपदी, राम, कृष्ण, सीता आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम, गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों के नाम, अयोध्या नगर आदि नाम अवश्य पाये जाते हैं, परन्तु वेद में इन लौकिक नामों से किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। वेद के सभी शब्द यौगिक हैं, आदिकाल में संस्कृत के समस्त नामपद यौगिक अर्थात् धातुज माने जाते थे। धात्विक अर्थों के अनुसार प्रकरणानुसार इनका अर्थ हो जाता है।

उदाहरणार्थ :- “यो वायुना यजति गोमतीषु” (ऋ० ४/२१/४) अर्थात्- जो वायु द्वारा गोमती में होम करता है।

“सरस्वती यां पितरो हवन्ते” (ऋ. १०/१७/८) अर्थात् उस सरस्वती को जिसमें पितर हवन करते हैं।

उपर्युक्त ऋग्वेद के दोनों मन्त्रों में गोमती और सरस्वती नदियों के नाम नहीं हैं, अपितु यज्ञ और हवन से सम्बन्ध रखने वाले नाम हैं। इसलिए स्पष्ट ही वे किरण के बोधक हैं।

अम्बे, अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।

ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥
(यजु० २३/१८)

इस मन्त्र में वर्णित अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीनों महाभारत के काशीराज की कन्याएँ नहीं हैं, जिन्हें भीष्म उठा ले गये थे। अपितु यहाँ अम्बा, अम्बिका

और अम्बालिका माता, दादी और परदादी के वाचक हैं।

वैदिक काल में महाराज मनु के वंशजों ने सरयू नदी के तट पर अयोध्या नगरी का निर्माण किया था, वेद के शब्द से ही उसका नाम रखा था।

“अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।”
(अथर्व० २०/२/३२)

इस मन्त्र में शरीर को ही देवताओं की नगरी बताया है, जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार हैं।

नवद्वारे पुरे देही (गीता) अर्थात् जिसमें देही (आत्मा) निवास करता है।

इससे ज्ञात होता है कि वेदादि शास्त्रों में शरीर रूपी नगरी का नाम अयोध्या है।

“कृष्णायाः पुत्रोऽर्जुन” (अथर्व. १३/३/२६)

वेद के इस मन्त्र में अर्जुन को द्रौपदी (कृष्ण) का पुत्र बताया है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार “रात्रिर्वै कृष्णा, असावादित्यस्तस्या वत्सोऽर्जुनः”

यहाँ वेद और ब्राह्मणग्रन्थ दोनों में कृष्णा (द्रौपदी) नाम रात्रि का है और उससे उत्पन्न होने के कारण आदित्य अथवा दिन (अर्जुन) उसका पुत्र है।

इस प्रकार यहाँ द्रौपदी (रात्रि) और अर्जुन (दिन) को महाभारत की द्रौपदी और अर्जुन का वाचक नहीं माना जा सकता।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि वेद में अनित्य इतिहास अर्थात् किसी व्यक्ति या जाति विशेष का उल्लेख नहीं है। जिस वेदार्थ से वेद में लौकिक इतिहास का संकेत मिलेगा वह वेद की मूल भावना का द्योतक होगा। वेद से भिन्न अन्य धार्मिक ग्रन्थों में लौकिक इतिहास, भूगोल पाया जाता है। इसलिए उन्हें ईश्वरीय रचना नहीं कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ :-

ईश्वर ने वेद ज्ञान क्यों दिया, इसके कारण

ईश्वर ने वेदज्ञान क्यों दिया, इसके मुख्य चार कारण हैं। वे इस भाँति हैं।

१. ज्ञान दो किस्म का होता है- पहला स्वाभाविक ज्ञान दूसरा नैमित्तिक ज्ञान। स्वाभाविक ज्ञान खाना-पीना,

वाइवल- बाबुल के राजा नबूखुद नजर के राज्य के उन्नीसवें बरस के पांचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अह्वान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था। यरूसलम में आया और हर एक बड़े घर को जला दिया। (तौ.रा.प.२५/आ.०८-१०)

कुरान- जब युसूफ ने अपने बाप से कहा कि ऐ बाप मेरे ! मैंने एक स्वप्न देखा। (मं. ३/सि. १२/सू. १२/आ.४-५६)

हमने इस कुरान को अरबी में नाजिल किया है, ताकि तुम इसे समझ सको। (मं.३/सि.१३/सू.१३/आ. ३७,४०) (सूरते युसुफ आ.१)

दूसरी आयत से लगता है कि खुदा का कुरान उतारने का मुख्य उद्देश्य केवल अरब वासियों का सुधार करना था। अरबी भाषा निश्चित रूप से एक देश विशेष की भाषा है। देश-विदेश की भाषा में ईश्वरीय ज्ञान देने से ईश्वर पर पक्षपात का आरोप लग सकता है। परन्तु न्यायकारी परमपिता परमेश्वर ने वेदरूपी ज्ञान संस्कृत भाषा में प्रदान किया जो मूल रूप से सबकी भाषा थी।

वाइवल और कुरान में लौकिक इतिहास के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जबकि हम कह सकते हैं कि वेदों में लौकिक इतिहास नहीं है।

यहाँ यह बात समझने की है कि इस लेख में रूढ़ और योगिक शब्द कई बार आये हैं। इनके क्या अर्थ हैं, यह हमको जानना उचित है। रूढ़ या रूढ़िवादी का अर्थ है, जैसा शब्द है, उसका वैसा ही अर्थ लगा लेना और योगिक शब्द का अर्थ होता है, उसके आगे-पीछे के प्रकरणानुसार अर्थ लगाना, जिसके काफी अर्थ निकल सकते हैं। वेदों में अधिकतर योगिक शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। उनका भाष्यकारों ने रूढ़ी अर्थ लगा लिया, इसी से अर्थ का अनर्थ हुआ है।

सोना-जागना, हंसना-रोना तथा बच्चे पैदा करना आदि है। यह ज्ञान पशु-पक्षियों में अधिक और मनुष्यों में कम होता है। कारण पशु-पक्षी इसी ज्ञान से पूरे जीवन अपना काम चलाते हैं। इसमें किये हुए कर्मों का फल

नहीं मिलता। दूसरा नैमित्तिक ज्ञान वह होता है, जो सिखाने से सीखा जाता है। सिखाये बगैर इस ज्ञान का कोई महत्व नहीं। यह ज्ञान मनुष्यों में बहुत अधिक और पशु-पक्षियों में बहुत कम होता है। पशु-पक्षियों का बच्चा पैदा होते ही पानी में तैर सकता है, जैसे कुत्ते के बच्चे को आप पानी में डाल दीजिए, वह तैर कर बाहर निकल जायेगा। कारण यह पशु-पक्षियों के लिए स्वाभाविक ज्ञान है और मनुष्य के बच्चे को यदि आप पानी में डाल देंगे, तो वह डूब जायेगा और यदि आप उसको तैरना सिखा दोगे तो वह तैर कर पार हो जाएगा। कारण तैरना मनुष्य के लिए नैमित्तिक ज्ञान है। इस ज्ञान से किये हुए कर्मों का ईश्वर की न्याय व्यवस्था से उसे अच्छा या बुरा फल मिलता है। मनुष्य भी खाता-पीता, उठता-बैठता, सोता-जागता, आँख खोलना-बन्द करना, बच्चे पैदा करना, ये सभी काम उसके स्वाभाविक काम हैं, इनका फल ईश्वर नहीं देता। अब प्रश्न उठता कि जब ईश्वर ने प्रकृति से जीवों के लिए आदि में सृष्टि तिब्बत के पठार पर कृत्रिम गर्भाशय बनाकर अनेक नौजवान लड़के-लड़कियों को उत्पन्न किया उस समय उनके माता-पिता, गुरु आदि कोई नहीं थे, जिनसे वे युवा लड़के-लड़कियाँ चलना, फिरना, बोलना आगे सीख सकें। उस समय उनका ईश्वर ही माता-पिता तथा गुरु था, इसलिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा थे, उनके हृदय में चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं, प्रकाशित करके उनके मुख से उच्चारित करवाया। ज्ञान ईश्वर प्रदत्त था और उच्चारित उन ऋषियों ने किया। जिस प्रकार कोई व्यक्ति माइक पर बोलता है तो बोलता तो व्यक्ति है और आवाज को प्रेषित माइक करता है। ठीक इसी प्रकार जो वेदज्ञान चार ऋषियों द्वारा उच्चारित किया गया, वह ज्ञान तो ईश्वर का था और उच्चारित करने वाले ऋषि थे। ऋषियों के मुख से सब से पहले ब्रह्मा ऋषि ने सुना। ब्रह्मा की बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उन्होंने चारों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया और फिर उसे बाकी जनता को सुनाया। और फिर ब्रह्मा से सुनकर माता-पिता ने अपने बेटे-पौत्रों को तथा गुरु ने अपने शिष्यों को सुनाया।

इस प्रकार से बाप-बेटे को और गुरु-शिष्य को सुनाने की परम्परा चालू हो गई, जो अब तक चलती आ रही है। महाभारत तक तो वेद-ज्ञान का प्रचार व प्रसार बराबर चलता रहा, परन्तु महाभारत के भीषण युद्ध में अधिकतर योद्धा, विद्वान्, आचार्य आदि या तो मारे गये या मर गये और महाभारत के बाद मूर्ख, अविद्वान् व स्वार्थी लोगों ने अपने-अपने ढंग से अनेक-मत-मतान्तर चला दिये जिससे वेद-ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया। वेद ज्ञान में ईश्वर ने मनुष्य को अपने जीवन में क्या काम करना चाहिए और क्या काम नहीं करना चाहिए सब दिया। वेदों के अनुसार चलने से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत, समृद्धिशाली व सुखी तो बनाता ही है, साथ ही धर्म, अर्थ, काम को कर्तव्य भाव से करते हुए ध्यान, धारणा व समाधि तक पहुँच जाता है और समाधि में आनन्द को अपने जीवन में ही प्राप्त करता है और मृत्यु के बाद मोक्ष की स्थिति में ईश्वर के सान्निध्य में रहते हुए परम आनन्द को प्राप्त करता है। मोक्ष की अवधि ३१ नील १० खरब ४० अरब है तब तक मोक्ष में रहते हुए परम आनन्द को प्राप्त करता रहता है। जीव अधिक अच्छे शुभ काम करने से मनुष्य योनि को प्राप्त करता है और इसी योनि में जीवन-भर निष्काम कर्म करते हुए यानि परोपकार के कार्य करते हुए जीवन-यापन करता है। वह व्यक्ति मरने के बाद मोक्ष को प्राप्त करता है, जो जीव का अन्तिम लक्ष्य है। इसीलिए मनुष्य योनि को सबसे श्रेष्ठ व उत्तम योनि माना है और मोक्ष पाने का द्वार भी मनुष्य योनि ही है। अन्य योनियाँ नहीं।

२. वेदज्ञान मनुष्यमात्र का विधान है:- जैसे किसी देश व राष्ट्र का विधान होता है, वह देश व राष्ट्र उसी विधान के अनुसार चलता है, तभी उस देश व राष्ट्र में सुख व शान्ति बनी रहती है। देश को चलाने के लिए जैसे विधान जरूरी है, वैसे ही सृष्टि को चलाने के लिए वेद-ज्ञान जरूरी है, जिसको ईश्वर में सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने चार ऋषियों के हृदय में प्रकाश करके दिया जिसके अनुसार चलने से मनुष्य सुख व शान्ति को स्वयं भी प्राप्त करता है और अन्यों को भी सुखी बनाता है।

३. बुद्धि के लिए ईश्वर ने वेद-ज्ञान दिया:- जिस

प्रकार ईश्वर ने मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियों के लिए पाँच तत्व दिये, जिनके सहारे वह अपना जीवन चलाता है। जैसे आँख के लिए अग्नि दी, जिसके प्रकाश से आँखें रूप को देखती हैं। कानों के लिए आकाश बनाया, जिसके सहारे वह शब्द सुनता है। नाक के लिए पृथ्वी बनाई जिससे वह गन्ध को ग्रहण करता है। जिह्वा के लिए पानी बनाया जिससे वह रस का अनुभव करती है और त्वचा के लिए हवा बनाई, जिससे वह स्पर्श का अनुभव करती है। यह पाँचों तत्व ईश्वर ने सृष्टि बनाने के साथ ही मनुष्यों के लिए बना दिये थे। इसी प्रकार बुद्धि के लिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में ही वेद-ज्ञान दे दिया, जिसके अनुसार चलने से वह अपने जीवन को उन्नत व सुखी बना सके। यदि ईश्वर वेद-ज्ञान न देता तो बुद्धि अपना कार्य नहीं कर पाती और उसका बनना व्यर्थ हो जाता। वेदों को पढ़कर मनुष्य बुद्धि से चिन्तन व मनन करता है और अपने जीवन को उन्नत व सुखी बनाता है। यह बात भी सत्य है, यदि ईश्वर ने मनुष्य उत्पत्ति के आरम्भ में वेद-ज्ञान न दिया होता, तो मनुष्य पशुवत् ही रह जाता।

४. किसी मशीन को बनाने के बाद वैज्ञानिक निर्देश-पत्र बनाता है:- एक वैज्ञानिक यदि कोई मशीन बनाता है तो उस मशीन का कैसे प्रयोग किया जावे। खराब होने से कैसे ठीक किया जावे, यह सब बातें एक लघु पुस्तिका में लिख कर अपने खरीददार को देता है, जिसके आधार पर खरीददार उस मशीन का प्रयोग करता है और कभी खराब हो जाने से उसी लघु पुस्तिका

पृष्ठ २ का शेष

इसी वैदिक भाव को महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में 'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।' (२/३३) सूत्र के माध्यम से प्रकट किया है। जो अनिच्छनीय हैं, अनादर्श हैं, योग में बाधक हैं, उन अनिष्टों के प्रति अप्रीति का भाव होना/अश्रद्धा होना प्रतिपक्ष भावना है। यजुर्वेद के 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।

यद् भद्रं तन्न आसुव।' (३०.३) मन्त्र में दुरितों को- दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को 'परासुव'- दूर रखने की जो भावना व्यक्त की गई है, उन अनिष्टों के प्रति जो विरक्ति के भाव प्रकट किए गए हैं, उन्हीं को हम 'अश्रद्धा' समझ सकते हैं।

ऐसे ही अथर्ववेद (६.४५.१) के

से उसे ठीक भी करता है। इसी प्रकार ईश्वर ने भी मनुष्य की उत्पत्ति के साथ-साथ वेद-ज्ञान भी मनुष्यों के लिए दिया, जिसको पढ़कर तथा उसके अनुसार चलकर धर्म, अर्थ, काम को धर्मानुसार व कर्तव्यभाव से करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है, जो मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है। जिसको पाने के लिए जीव मनुष्य योनि में आता है।

यहाँ समझने की बात यह है कि मनुष्य की देह से जब आत्मा या जीव जाता है, तो उसकी तीन गतियाँ होती हैं। यदि उस मनुष्य ने अपने जीवन में आधे से अधिक अच्छे व शुभ कर्म किये हैं, तो उसको एक साधारण मनुष्य जीवन मिलता है। आधे से जितने अधिक अच्छे व शुभ कर्म करेगा, तो उतनी ही मनुष्य योनि में अच्छा सुखदायक परिवार में उत्पन्न होगा। यानि एक गरीब परिवार में न होकर किसी साहुकार, राजा या कोई बड़े मन्त्री के घर पैदा होगा। और जीवन में बुरे काम अधिक किये हैं, तो औसतन के हिसाब से पशु-पक्षियों या कीट-पतंगों की योनि में जन्म लेगा और जिस व्यक्ति ने जीवन भर अच्छे सत्कर्म या परोपकारी काम किये हैं, उसे मरने के बाद मोक्ष प्राप्त होगा। बस ये तीन गति ही मनुष्य चोला छोड़ने के बाद होती हैं। यह सब बातें मनुष्य ने अपनी कल्पना शक्ति से तय की हैं, बाकी सही बात या विधि तो ईश्वर को ही ज्ञात है जो जीव के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार उसको अगली योनि देता है।

□□

‘परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।

परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं

चर गृहेषु गोषु मे मनः।।' मन्त्र में पाप प्रवृत्ति की ओर लं चलने वाली चित्त-वृत्तियों के प्रति पाई जाने वाली तिरस्कार की भावना ऐसी ही कल्याणकारी अश्रद्धा ही तो है। जीवन-व्यवहार में ऐसी अश्रद्धा होनी चाहिए। वह भी श्रद्धा के सदृश कल्याणकारी होती है।

अतः हम केवल श्रद्धालु न बने रहें, बल्कि साथ-साथ में अश्रद्धालु भी हों- वेदानुसार यही कल्याण का मार्ग है। हां, किस में श्रद्धा रखनी है और किस में अश्रद्धा-यह विवेक से निश्चय करना अति आवश्यक है।

□□

आर./आर. नं० १६३३०/६७

Post in Delhi R.M.S

भार- ४० ग्राम

१८-१६/१०/२०१६

अक्टूबर 2016

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17

लाइसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७

Licenced to post without prepayment

Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-६६५०५२२७७८

श्री सेवा में

ग्राम

डा०

जिला

छपी पुस्तक/पत्रिका

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36+16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36+16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30+8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

Ph.: 011-43781191, 09650622778

427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6

E-mail: aspt.india@gmail.com

दयानन्दसन्देश ● अक्टूबर २०१६ ● २८

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।